

विषय सूची

१—प्रस्तावना	पृष्ठ	(१)
२—राग	"	१
३—मालिक	"	६०
४—पदों के अर्थ	"	७२
५—सलोंको के अर्थ	"	१२७

रागों का निर्देश

१ राग सिरि	पृष्ठ	१
२ " गउरी	"	३
३ " आसा	"	२३
४ " सोरठि	"	३२
५ " तिलंग	"	३४
६ " सूही	"	३४
७ " गौंड	"	३६
८ " रामकली	"	४०
९ " केदारा	"	४४
१० " भैरव	"	४७
११ " विभास प्रभाती	"	५७
१२ " सलोक	"	६०

(संक्षिप्त)

[इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के बी० ए० के पाठ्यक्रम
में निर्धारित]

रामकुमार वर्मा

साहित्य भवन, लिमिटेड, इलाहाबाद ।

१९४६

प्रकाशक :—
साहित्य-भवन लिमिटेड,
इलाहाबाद ।

मूल्य २)

मुद्रक :—
श्रीजगतनारायणलाल,
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

प्रकाशकीय

‘संत कवीर’ एक प्रामाणिक ग्रंथ है, जैसा कि विद्वानों को विदित ही है। हिंदी साहित्य में ऐसे ग्रंथ कम हैं जिनमें कवि तथा उसके काव्य से संबंधित विषयों का समुचित निरूपण हो। ‘संत कवीर’ एक ऐसा ही ग्रंथ है। परंतु उसका आकार बड़ा हो जाने के कारण मूल्य भी अधिक हो गया, और विद्यार्थी एवं जन-साधारण उसका उपयोग पूर्ण रूप से न कर सके। उन्हीं लोगों के लिए यह संक्षिप्त संस्करण प्रस्तुत किया जाता है। आशा है, विद्यार्थियों की माँग इस संस्करण से पूर्ण हो सकेगी।

प्रकाशक

प्रस्तावना

कवीर की कविता एक युगांतरकारी रचना है। भक्त कवियों की विनयशीलता और आत्म-भर्त्सना के बीच में वह स्पष्ट कंठ में कही गई धार्मिक और सामाजिक जीवन की पक्षपात-कवीर की कविता रहित विवेचना है। उस कविता में समय की श्रृंखला परंपराओं को छिन्नमूल करने की शक्ति है और जीवन में जागृति लाने की अपूर्व क्षमता। हिंदी साहित्य के धार्मिक काल के नेता के रूप में कवीर ने जितने साहस से परंपरागत हिंदू धर्म के कर्मकांड से संघर्ष लिया उतने ही साहस से उन्होंने भारत में जड़ पकड़ने वाली इस्लाम की नवीन सांप्रदायिक भावना से लोहा लिया। कवीर ने सफलतापूर्वक दोनों धर्मों की 'अधार्मिकता' पर कुठाराघात किया और एक नये संप्रदाय का सूत्रपात किया जो 'संतमत' के नाम से प्रख्यात हुआ। इस संप्रदाय ने शास्त्रीय जटिलताओं से सुलभता कर धर्म को सरल और जीवनमय बना दिया जिससे साधारण जनता भी उससे अंतः प्रेरणाएँ ले सके। यही कारण है कि इस संतमत में समाज के साधारण और निम्न व्यक्ति भी सम्मिलित हो सके जिनकी पहुँच शास्त्रीय ज्ञान तक नहीं थी। कवीर ने साधारण जीवन के रूपकों द्वारा अथवा अनुभूतिपूर्ण सरस चित्रों के सहारे ही आत्मा, परमात्मा और संसार की समस्याओं को सुलभाया। धर्म-प्रचार की इस शैली ने धर्म को व्यक्तिगत अनुभव का एक अंग बना दिया और समाज ने धर्म के वास्तविक रूप को पहिचान लिया।

जनता का यह गतिशील सहयोग कवीर की रचनाओं के पक्ष में अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ। कवीर संत पहले थे, कवि बाद में। उन्होंने

कविता का चमत्कार प्रदर्शित करने के लिए कंठ सुललित नदी किया, उन्होंने धर्म के व्यापक रूप को सुवोध बनाने के कविता का रूप लिए काव्य नियोजित किया। अतः कबीर में धार्मिक

दृष्टिकोण प्रधान है काव्यगत दृष्टिकोण गौण। यह

दूसरी बात है कि जीवन में 'गहरी पैठ' होने के कारण उनकी कविता में जीवन क्रांति सदसमुखी हो उठी। उससे धर्म प्राणमय होकर अनेक चित्रों में साकार हो गया। संत कबीर कवि कबीर हो गए, यद्यपि संत ने न तो भाषा के रूप को सँवारा और न पिंगल की मात्रिक और वर्णिक शैली का अनावश्यक अनुकरण किया। गेय पदों के रूप में उन्होंने कविता कही और जनता ने उसमें अपना कंठ मिला दिया। जनवाणी के रूप में ये पद समाज में संचरित हो गए। साथ ही साथ कबीर के नाम से जनता ने नवीन पदों की रचना करने में कबीर के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति समझी। इस प्रकार कबीर की वाणी में ऐसे-ऐसे पद प्रक्षिप्त किए गए जिनमें न तो कबीर की आत्मा है और न उसका ओज। कबीर ने 'पुस्तक-ज्ञान' का तिरस्कार किया था अतः स्वयं उन्होंने किसी विशिष्ट ग्रंथ की रचना नहीं की। वे तो जनता में उपदेश देते थे और अपने पदों को उपदेश का माध्यम बनाते थे। फलतः पदों में न तो कोई क्रमबद्धता है और न कोई शृंखला। कविता का रूप मुक्तक होने के कारण संत संप्रदाय के भक्तों द्वारा मनमाना बढ़ाया-घटाया गया है। अतः कबीर के नाम से प्रसिद्ध रचना में कबीर की वास्तविक रचना पाना बहुत कठिन हो गया है। कबीर के नाम से पाई जाने वाली रचना अधिकांशतः कबीर के प्रथम शिष्य धर्मदास द्वारा ही लिखी गई है। बाद में तो कबीर-पंथी साधुओं ने अपनी ओर से बहुत-सी रचना की और संत कबीर में अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा होने के कारण उसे कबीर के नाम से ही प्रचारित किया। कबीर के प्रति इस श्रद्धा और भक्ति ने कबीर की कविता का वास्तविक रूप ही हमसे

छीन लिया और आज कबीर के नाम से प्रचलित रचना को हम संदिग्ध दृष्टि से देखने लगे हैं।

इस समय कबीर की कविता के बहुत से संग्रह कविता के संग्रह प्रकाशित हैं। प्रायः सभी में पाठ-भेद है। इस दृष्टि-कोण से निम्नलिखित संस्करण अधिक प्रसिद्ध कहे जा सकते हैं :—

१. संतवानी संग्रह (वेलवेडियर प्रेस) प्रकाशित सन् १९०५,
वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।

२. बीजकमूल (कबीरचौरा, बनारस) प्रकाशित सन् १९३१,
महावीर प्रसाद, नैशनल प्रेस, बनारस कैट।

३. सत्य कबीर की साखी (श्री युगलानंद कबीरपंथी भारतपथिक)
प्रकाशित सन् १९२०, श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई।

४. सद्गुरु कबीर साहब का साखी ग्रंथ (कबीर धर्मवर्धक
कार्यालय, सीयावाग, बड़ौदा) प्रकाशित सन् १९३५, महंत श्री
बालकदासजी; धर्मवर्धक कार्यालय, सीयावाग, बड़ौदा।

५. बीजक श्री कबीर साहब (साधु पूरनदास जी) प्रकाशित
सन् १९०५, बाबू मुरलीधर, काली स्थान, करनेलगंज, इलाहाबाद।

६. कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) प्रकाशित
सन् १९२८, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।

उपर्युक्त संस्करणों में बीजक और साखी ग्रंथ अलग-अलग अथवा
मिले हुए ग्रंथ हैं जिनसे कबीर की कविता का ज्ञान जनता में सम्यक् रूप

संग्रहों की से अवश्य हो गया किंतु इन सभी संस्करणों की
प्रामाणिकता प्रामाणिकता चिंत्य है। वेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित
संतवानी-संग्रह का प्रचार सर्वाधिक है किंतु यह प्रति
संतों और महात्माओं द्वारा एकत्रित सामग्री के
आधार पर ही संकलित की गई है। उसका रूप साधु-संतों के गाये हुए

पदों और गीतों से ही निर्मित है, किसी प्राचीन हस्तलिखित प्रति का आधार उसके संकलन में नहीं लिया गया और यदि लिया भी गया है तो उसका कोई संकेत नहीं दिया गया।

कबीरचौरा ने जो बीजक मूल की प्रति प्रकाशित की है, उसका पाठ अनेक प्रतियों के आधार पर अवश्य है किंतु वे प्रतियाँ केवल 'साक्षी रूप' से ही उपयोग में लाई गई हैं।^१ इस बीजक मूल प्रति का मूल आधार कबीरचौरा का प्राचीन प्रचलित पाठ है। किंतु यह प्राचीन पाठ किस प्रति के आधार पर है, इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया।

श्री युगलानंद कबीरपंथी भारतपथिक की प्रति प्रामाणिक प्रतियों की सहायता से भी प्रामाणिक नहीं हो सकी। श्री युगलानंद ने अपनी प्रति को अनेक प्रतियों से शुद्ध भी किया है। "जिन पुस्तकों से यह शुद्ध हुई है उनमें से एक प्रति तो रसीदपुर शिवपुर निवासी श्रीमान् ब्रह्मशी गोपाललाल जी पूर्व अमात्य शिवहर राज्य के पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी जो संवत् १६०० की लिखी हुई है। दूसरी प्रति नागपुर सत्य कबीर की इन्द्रमान जी निवासी श्री भैरवदीन तिवारी जी ने साखी कृपाकर भेजी थी जिसमें अनेक संतों की वाणी के साथ-साथ यह साखी भी है और संवत् १८४२ की लिखी है और तीसरी प्रति मखदूमपुर जिला गया निवासी

^१ बीजक मूल के संपादक साधु लखनदास और साधु रामफलदास लिखते हैं :—

अपने मत तथा इस ग्रंथ का संशोधन ग्यारह ग्रंथों से किया है जिसमें छः टीका-टिप्पणी साथ हैं और पाँच हाथ की लिखी पोथी है परंतु इन सब ग्रंथों को साक्षी रूप में रखा था, केवल स्थान कबीरचौरा काशी के पुराने और प्रचलित पाठ पर विशेष ध्यान दिया गया है।

श्री नेतालालराम जी की भेजी हुई है, जिसमें यद्यपि सन् संवत् नहीं लिखा है परंतु पुस्तक के देखने से जान पड़ता है कि यह भी प्राचीन ही लिखी हुई है। इसके अतिरिक्त स्वामी श्री युगलानंद जी के पास और भी अनेक प्रतियाँ थीं जिसने उन्होंने इस पुस्तक को शुद्ध कर लिया है।” (श्री खेमराज श्रीकृष्णदास) यदि श्री युगलानंद जी अपनी प्रति में संवत् १६०० की प्रतिवाली सामग्री रखते तो उनकी प्रति अवश्य प्रामाणिक होती किंतु उन्होंने किया यह है कि ‘कबीर साहब की जितनी साखियाँ जगत में प्रसिद्ध हैं सब इसी पुस्तक में’ संकलित कर ली हैं और उन्हें संवत् १६०० की प्रति की साखियों से यथास्थान शुद्ध किया है। इससे इस पुस्तक की बहुत-सी सामग्री संवत् १६०० की प्रति से अतिरिक्त है और उसकी प्रामाणिकता के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनकी प्रति में प्रामाणिक और अप्रामाणिक सामग्री एक साथ मिल गई है।

कबीर धर्मवर्धक कार्यालय सीयावाग बड़ौदा का साखी ग्रंथ एक आलोचनात्मक अवतरणिका और अनुक्रमणिका के साथ है और उसमें कबीर की सभी साखियाँ संग्रहीत हैं किंतु साखी ग्रंथ पुस्तक में किसी भी स्थान पर नहीं लिखा है कि साखियों के पाठ का आधार क्या है। अतः इस पाठ की प्रामाणिकता के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

साधु पूरनदास जी का बीजक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध कहा जाता है। संवत् १८६४ में उन्होंने उसकी ‘त्रिज्या’ लिखी। यह त्रिज्या “पहली बार बाबा देवीप्रसाद और सेवादास और मिस्त्री बीजक बालगोविंद की सहायता से मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा लखनऊ के छापेखाने में छपी गई थी। उसके बहुत अशुद्ध हो जाने के कारण हर जगह के साधु लोग बहुत शिकायत

किया करते थे ।.....सब साधु-महात्माओं की दया से एक प्रति हस्तलिखित बीजक त्रिज्या सहित बुरहानपुर की लिखी हुई, साधु काशीदास जी साहब से हमको मिली । उस ग्रंथ की शुद्धता को देखकर हमारा मन बहुत प्रसन्न हुआ, और साधु काशीदासजी साहब ने इस त्रिज्या के शोधने में पूर्ण परिश्रम उठाकर सहायता दी है ।” (बाबू मुरलीधर) यहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि साधु काशीदास जी साहब की जो प्रति थी वह किस संवत् की थी और उसका आधार क्या था ? यों बीजक की कबीर के विचारों का पुराना संग्रह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

प्रामाणिकता के दृष्टिकोण को सामने रखते हुये काशी नागरी प्रचारिणी सभा से रायबहादुर श्री (अब डाक्टर) श्यामसुन्दरदास जी ने कबीर ग्रंथावली का प्रकाशन किया । यह संस्करण कबीर ग्रंथावली दो प्राचीन प्रतियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है । एक प्रति संवत् १५६१ की लिखी हुई है और दूसरी संवत् १८८१ की । “दोनों प्रतियाँ सुन्दर अक्षरों में लिखी हैं और पूर्णतया सुरक्षित हैं । इन दोनों प्रतियों के देखने पर यह प्रकट हुआ कि इस समय कबीरदास जी के नाम से जितने ग्रंथ प्रसिद्ध हैं उनका कदाचित् दशमांश भी इन दोनों प्रतियों में नहीं है । यद्यपि इन दोनों प्रतियों के लिपिकाल में ३२० वर्ष का अंतर है पर फिर भी दोनों में पाठ-भेद बहुत ही कम है । संवत् १८८१ की प्रति में संवत् १५६१ वाली प्रति की अपेक्षा केवल १३१ दोहे और ५ पद अधिक हैं ।” नागरी प्रचारिणी सभा के इस संस्करण का मूल आधार संवत् १५६१ की लिखी हस्तलिखित प्रति है जिसके प्रथम और अंतिम पृष्ठों के चित्र इस संस्करण के साथ प्रकाशित हैं । यदि इस प्रति को बारीकी से देखा जाय तो इसकी प्रामाणिकता के संबंध में संदेह बना ही रहता है । संदेह का पहला कारण तो यह है कि इस हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका ग्रंथ

में लिखे गए अक्षरों से भिन्न और मोटे अक्षरों में लिखी गई है। समस्त ग्रंथ और पुष्पिका लिखने में एक ही हाथ नहीं मालूम होता। प्रति का अंतिम अंश यह है:—

इति श्रीकवीरजीकीवाणीसंपूर्णसमाप्तः ॥ सापी ॥ ८१० ॥ अंग ॥ ६६ ॥
पद ४०२ ॥ राग १५ ॥

पुष्पिका यह हैः—संपूर्णसंवत् १५६१ लिप्पकृतावाणारसमध्यपेम-
चंद पठनाय् मल्लकदासवाचबिचाजांसूत्री रामरामछयाद्रसि पृस्तकंद्रप्राता
इसंलितंमया यद्विशुद्धंतोवाममदोशोनदियतां ॥

प्रति के अंतिम अंश का ‘संपूरण’ पुष्पिका में ‘संपूर्ण’, हो गया है। इस संबंध में श्री हज़ारी प्रसाद द्विवेदी भी लिखते हैं, “एक बार ‘इति श्री कबीर जी की वाणी संपूरण समाप्तः ॥५.....’ इत्यादि लिखकर फिर से अपेक्षाकृत मोटी लिखावट ने ‘संपूर्ण संवत् १५६१’ इत्यादि लिखना क्या संदेहास्पद नहीं है ? पहली बार का ‘संपूरण’ और दूसरी बार का ‘संपूर्ण’ काफी संकेतपूर्ण हैं। एक ही शब्द के ये दो रूप—हिज्जे और आकार-प्रकार में स्पष्ट ही बता रहे हैं कि ये एक हाथ के लिखे नहीं हैं ! ऐसा जान पड़ता है कि अंतिम डेढ़ पंक्तियाँ किसी बुद्धिमान की कृति हैं ।” इस प्रकार इस प्रति की पुष्पिका का संपूर्ण ग्रंथ के बाद की लिखी हुई जान पड़ती है। पुष्पिका में एक बात और ध्यान देने योग्य है। मूल में ‘ल’ ‘क’ ‘श्री’ जिस आकार-प्रकार में लिखे गए हैं उस आकार-प्रकार में वे पुष्पिका में नहीं लिखे गए। फिर मूल प्रति में ‘य’ और ‘व’ के नीचे बिंदु रखे गए हैं जो पुष्पिका के ‘य’ और ‘व’ के नीचे नहीं हैं। ‘दोष’ के हिज्जे के अंतर ने तो यह स्पष्ट ही निश्चित कर दिया है कि पुष्पिका और मूल एक ही व्यक्ति द्वारा नहीं लिखे गए। मूल के अंतिम पृष्ठ की चौथा पंक्ति में है:—“पीया दूध रुझ है आया मुई गाइ तब दोष लगाया।” यही ‘दोष’ पुष्पिका में ‘दोशो न दियतां’

रागु गौड़ी के बारहवें पद की दो पंक्तियाँ लीजिए :—

धौ मंदलिया बैलर बावी, कऊवा ताल बजावै ।

पहरि चोल नांगा दह नाचै, भैंसा निरति करावै ॥

यहाँ 'बैलर बावी' और 'चोल नांगा दह नाचै' का कोई अर्थ नहीं होता । वास्तव में 'बैलर बावी' के स्थान पर होना चाहिए 'बैल रवावी' और 'चोल नांगा दह नाचै' के स्थान पर 'चोलना गादह नाचै ।' इस प्रकार के अशुद्ध पाठ कवीर ग्रंथावली में भरे पड़े हैं । अतः कवीर की कविता का प्रामाणिक पाठ इस संस्करण द्वारा भी प्रस्तुत नहीं किया जा सका ।

कवीर का प्रामाणिक पाठ जानने के संबंध में हमारे पास कोई विशेष सामग्री नहीं है । कवीर ने पुस्तक-ज्ञान का सदैव तिरस्कार किया है । अतः इसमें संदेह है कि उन्होंने किसी ग्रंथ की रचना की होगी । उन्होंने जीवन और संसार पर चिंतन कर उपदेश दिए और शिष्यों ने उन्हें स्मरण रखकर बाद में पुस्तक रूप से प्रस्तुत किए । कवीर ने पुस्तकों से अध्ययन तो नहीं किया किंतु उन्होंने अपना ज्ञान सत्संग और स्वानुभूति से अवश्य अर्जित किया । वे साधारणतः पढ़े-लिखे हो सकते हैं क्योंकि अक्षर-ज्ञान से संबंध रखने वाली 'बावन अखरी' उन्होंने लिखी है । यह कहा जा सकता है कि 'पंद्रह तिथि' 'सात बार' और 'बावन अखरी' जोगेसुरीबानी की परंपरा हो सकती है और नाथपंथ से उसका विशेष प्रचार भी हो सकता है किंतु एक बात है । कवीर की 'पंद्रह धिंती' 'सात बार' के समानांतर गोरखबानी में 'पंद्रह तिथि' और 'सप्तवार' की रचना तो हमें मिलती है किंतु 'बावन अखरी' की रचना प्राप्त नहीं होती । 'बावन अखरी' की परंपरा की भी संभावना हो सकती है क्योंकि जायसी जैसे सूफ़ी सिद्धांत से प्रभावित कवि ने 'अखरावट' की रचना कर वर्णमाला के बावन अक्षरों के संकेत लिखे हैं । फिर भी 'बावन अखरी' से कवीर में अक्षर-ज्ञान की संभावना हम

गोरखनाथ से कभी कबीर का संवाद हुआ ही न होगा क्योंकि ये सब कबीर के पूर्ववर्ती हैं। कबीरपंथी साधुओं ने कबीर साहब का महत्त्व बढ़ाने के लिए उनकी प्रशंसा में ये ग्रंथ लिख दिये होंगे। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में कुछ ही ग्रंथों का लिपिकाल दिया गया है। इसके अनुसार सबसे पुराने हस्तलिखित ग्रंथ निम्नलिखित है :—

- | | |
|--------------------|-------------------|
| १ कबीर जी के पद | ३ कबीर जी की साखी |
| २ कबीर जी की रसैनी | ४ कबीर जी कौ कृत |

इन ग्रंथों का लिपिकाल विक्रम संवत् १६४६ दिया गया है और रचनाकाल संवत् १६००। कबीर १६०० तक जीवित नहीं रहे यह निर्विवाद है। अतः ये ग्रंथ उनके द्वारा नहीं लिखे जा सकते; उनके शिष्यों द्वारा इनकी रचना कही जा सकती है। ये सभी ग्रंथ जोधपुर के राज्य-पुस्तकालय के ग्रंथ जा सकती हैं। मैंने जोधपुर के राज्य-पुस्तकालय में सुरक्षित कहे गए हैं। मैंने जोधपुर के राज्य-पुस्तकालय से कबीर संबंधी सभी ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ मँगवाईं। वहाँ से मुझे ८ हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं जो निम्नलिखित हैं :—

- | | |
|---------------------|-----------------|
| १ कबीर गोरप गुष्ट | (पत्र-संख्या ७) |
| २ कबीर जी की मात्रा | („ १) |
| ३ कबीर परिचय | („ १३) |
| ४ कबीर रैदास संवाद | („ २) |
| ५ कबीर साखी | („ ३६) |
| ६ कबीर धम्माल | („ ११) |
| ७ कबीर पद | („ २४) |
| ८ कबीर साखी | („ ६) |

इन प्रतियों में खोज रिपोर्ट द्वारा निर्दिष्ट 'कबीर जी कौ कृत' और 'कबीर जी की रसैनी' नहीं है। 'कबीर जी की साखी' और 'कबीर जी

के पद' अवश्य हैं। किंतु जोधपुर राज्य-पुस्तकालय से प्राप्त हुए एक ग्रंथ को छोड़कर किसी भी ग्रंथ में लिपिकाल नहीं दिया गया है। केवल 'कबीर गोरप गुष्ट' का काल संवत् १७६५ दिया गया है। अतः खोज रिपोर्ट का प्रमाण संदिग्ध और अविश्वसनीय है।

मैंने कबीर संबंधी अनेक हस्तलिखित ग्रंथ देखे हैं किंतु उनके शुद्ध रूप के संबंध में मुझे विश्वास कम हुआ है। इसके अनेक कारण हैं :—

१. कबीर-पंथ के अनुयायी प्रमुखतः समाज की निम्न श्रेणी के होने के कारण साहित्य और भाषा के ज्ञान में अत्यंत साधारण होंगे। अतः हस्तलिपि-लेखन ग्रंथ में उनसे बहुत-सी भूलें हो सकती हैं।

२. कबीर का काव्य अधिकतर मौखिक ही रहा। वह गुरु के मुख में अधिक प्रभावशाली है, पुस्तक में नहीं। अतः कबीरपंथ में पुस्तक का महत्त्व गुरु से अपेक्षाकृत कम है। सद्गुरु का उपदेश 'कर्ण विभूषण' के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, पुस्तक-पाठ से नहीं। इसलिए पुस्तक-पाठ सदैव अप्रधान समझा गया है। जब गुरु का उपदेश प्रधान हो गया तब परंपरागत पाठ में परिवर्तन होने की आशंका यथेष्ट हो जाती है। प्रत्येक गुरु उस पाठ में अपनी स्मरण-शक्ति के अनुसार कम या अधिक परिवर्तन कर सकता है। फिर गुरु हो जाने पर तो अपनी ओर से घटाने और बढ़ाने का अधिकार भी वह रख सकता है। इस प्रकार प्रथम पाठ से यह उपदेश कितना दूर होगा, यह अनुमान किया जा सकता है। फिर युगों के प्रवाह में सिद्धान्तों की रूप-रेखा में भी भिन्नता आ सकती है। नये सिद्धान्तों के बीच में पड़ कर कविता की दिशा दूसरी ही हो जाती है।

३. कबीर के सिद्धान्त जनता में व्यापक रूप से प्रचलित थे। उनके विचार भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों में प्रचारित होते

रहे। अतः प्रांतीयता के दृष्टिकोण से अथवा अशिक्षित जनता के संपर्क में आने से उनके पदों और साखियों में बहुत भिन्नता आ सकती है। कबीर ग्रंथावली का पंजाबीपन इस बात का प्रमाण है। भाषा और भावों को इस भिन्नता से बचाने के लिए कभी कोई संघ और संगीति की आयोजना नहीं हुई। न कभी कोई ऐसा प्रयत्न हुआ जिससे भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्रचलित वाणी को एक रूप दे दिया जाता जैसा कि बौद्ध या जैन धर्मों में हुआ करता था। योग्य और मान्य आचार्यों के विचार-विनिमय अथवा परामर्श से जो काव्य में एकरूपता आती वह प्रक्षिप्त अथवा भूले हुए सिद्धांतों को व्यवस्थित कर सकती। किंतु इस प्रकार के प्रयत्न कबीरपंथ में कभी नहीं हुए।

४. हस्तलिखित ग्रंथों में जो पंक्तियाँ लिखी जाती हैं वे एक पूरी लकीर की लंबाई में कभी पूर्ण होती हैं, कभी अपूर्ण। यहाँ तक कि शब्द भी टूट जाते हैं। प्रतिलिपि करने में ऐसे स्थलों पर अनेक भूलें हो जाती हैं। पंक्तियों में शब्द भी आपस में जुड़े रहते हैं और वे शब्द स्पष्टतः आँखों के सामने न रहने से कभी-कभी प्रतिलिपियों में छूट जाते हैं। ऐसे प्रसंग अनेक बार हस्तलिखित प्रतियों में पाये जाते हैं। इस संबंध में कबीर ग्रंथावली से एक उदाहरण दिया जा चुका है। एक पूरा शब्द जब पंक्ति के अंत में टूट जाता है तब कभी-कभी उसे दूसरी पंक्ति जोड़ने से भ्रंति हो जाती है। विराम चिह्नों के अभाव में यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है।

५. कहीं कहीं अशुद्ध शब्द या चरण के नीचे बिंदु रखकर उसे छोड़ने का संकेत होता है या उसपर हरताल लगा दी जाती है किंतु प्रतिलिपिकार उस बिंदु को न समझकर अथवा हरताल के हलके पड़ जाने से अशुद्ध शब्द या चरण की प्रतिलिपि कर ही लेता है। वह हाशिया में दिये हुए छोड़े गए शब्दों को पंक्तियों में जोड़ भी लेता है।

६. कहीं-पत्र संख्या न डालने से पदों के क्रम में भी बहुत अड़चन

पड़ जाती है। पृष्ठों के बजाय पत्रों पर ही संख्या लिखी जाती है। अतः एक पत्र की संख्या मिट जाने पर अपने संदर्भ की सूचना नहीं दे सकता जब तक कि उसमें कोई टूटा हुआ शब्द या चरण न हो। इस कठिनाई से वह पत्र ग्रंथ में कहां जोड़ा जाय यह एक प्रश्न हो जाता है यदि दो-तीन पत्रों के संबंध में ऐसी कठिनाई हो गई तो सारा हस्तलिखित ग्रंथ ही क्रम-विहीन हो जाता है। उदाहरण के लिए नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित कबीर ग्रंथावली में 'भोकलनाइक बीठुला मेरो मन लागौ तोहि रे' (पद ५) के बाद 'अब मैं पाइचौ रे ब्रह्म गियान' (पद ६) है किंतु जोधपुर-राज्य पुस्तकालय की 'अथ कबीर जी के पद' में ५ के बाद 'मन रे मन ही उलट समाना' पद है जो कबीर ग्रंथावली में ८वां पद है। अनुमान होता है कि जिस मूल प्रति से जोधपुर-राज्य पुस्तकालय की प्रतिलिपि बनाई गई होगी उसका एक पत्र खो गया होगा।

३. कबीर के काव्य की प्रतियाँ स्वयं कवि द्वारा अथवा किसी संस्था द्वारा न लिखी जाकर भिन्न-भिन्न स्थानों में तथा भिन्न-भिन्न युगों में की गई हैं। छपाई के अभाव में प्रामाणिक प्रतियों की प्रतिलिपियों में भी अनेक अशुद्धियाँ आ जाती हैं। किसी प्रति की जितनी ही अधिक प्रतिलिपियाँ होंगी उसमें अशुद्धियों का अनुपात उतना ही अधिक बढ़ता जावेगा। फिर बड़ी रचना होने के कारण एक ही प्रति की प्रतिलिपियों में अनेक व्यक्तियों का हाथ हो सकता है। वहाँ भूलें और भी अधिक हो सकती हैं। समानता का अभाव तो हो ही जायगा। फिर यदि लिपिकार अहंभाव से युक्त होगा तो वह पाठ को अपनी ओर से शुद्ध भी कर लेगा।

८. भाषा-विज्ञान के अनुसार अनेक पीढ़ियों में उच्चारण-भेद हो जाना स्वाभाविक है। अतः जब तक मूल प्रति या उससे की गई प्रामाणिक प्रति न मिले तब तक पाठ के संबंध में पूर्ण आश्वस्त होना

अत्यंत कठिन है।

६. किसी रचना के भिन्न-भिन्न पाठों में ठीक पाठ चुनने का कार्य यदि किसी गुरु के द्वारा किया भी गया तो उसके चुनाव की उपयुक्तता भी संदिग्ध ही है। और यदि चुना हुआ पाठ मूल पाठ से भिन्न है तो फिर मूल पाठ आगे चलकर सदैव के लिए ही लोप हो जाता है।

इस प्रकार प्रतिलिपिकारों की अज्ञानता, समय का अत्याचार, गुरुओं की अहम्मन्यता, छपाई के अभाव में हस्तलेखन की कठिनाइयाँ, कविता के भिन्न-भिन्न प्रांतों में व्यापक और मौखिक प्रचार ने कबीर के काव्य को मूल से कितना विकृत किया होगा इसका अनुमान हम सरलता से कर सकते हैं। जब तक किसी प्राचीनतम प्रति का अन्य समकालीन प्रतियों से मिलान कर शुद्ध पाठ प्रस्तुत न किया जाय तब तक हम कबीर के शुद्ध पाठ के संबंध में संतुष्ट नहीं हो सकते।

उपर्युक्त समीक्षा को दृष्टि में रखते हुए कबीर की रचना का प्रामाणिक पाठ प्राप्त करना कठिन है। मेरे सामने अधिक से अधिक विश्वसनीय

पाठ श्री आदि गुरु ग्रंथ साहब का ज्ञान होता है।

श्री गुरु ग्रंथ साहब श्री ग्रंथ साहब का संकलन पाँचवें गुरु श्री अर्जुन-देव ने सन् १६०४ (संवत् १६६१) में किया था।

सन् १६०४ का यह पाठ अत्यंत प्रामाणिक है। इसका कारण यह है कि आदि श्री गुरु ग्रंथ सिक्खों का धार्मिक ग्रंथ है। यह ग्रंथ सिक्खों द्वारा 'देव स्वरूप' पूज्य होने के कारण अपने रूप में अक्षुण्ण है और इसके पाठ को स्पर्श करने का साहस किसी को नहीं हो सका। यहाँ तक कि एक-एक मात्रा को मंत्रशक्ति से युक्त समझ कर उसे पूर्ववत् ही लिखने और छापने का क्रम चला आया है। यह ग्रंथ गुरुमुखी लिपि में है। जब गुरुमुखी लिपि से यह देवनागरी लिपि में छपा गया तब 'शब्द के स्थान शब्द' रूप में ही इसका रूपान्तर हुआ क्योंकि सिक्ख धर्म के अनुयायियों में विश्वास है कि 'महान् पुरुषों की तरफ से जो

अक्षरों के जोड़-तोड़ मंत्र रूप दिव्य वाणी में हुआ करते हैं, उनके मिलाप में कोई अमोघ शक्ती होती है जिसको सर्वसाधारण हम लोग नहीं समझ सकते। परंतु उनके पठन-पाठन में यथातथ्य उच्चारण से ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सकती है। इसके सिवाय यह भी है कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी के प्रतिशत ८० शब्द ऐसे हैं जो हिंदी पाठक ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इस विचार के अनुसार ही यह हिंदी बीड़ गुरुमुखी लिखत अनुसार ही रखी गई है अर्थात् केवल गुरुमुखी अक्षरों के स्थान हिंदी (देवनागरी) अक्षर हो किये गये हैं।^१ (प्रकाशक की विनय पृष्ठ १, भाई मोहनसिंह वैद्य)।^१ इस प्रकार आदि श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी का जो पाठ सन् १०६४ में गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा प्रस्तुत किया गया था, वह आज भी वर्तमान है। किसी पंडित द्वारा वह नहीं 'शोध' गया। अतः इस पाठ को हम अधिक से अधिक प्रामाणिक पाठ मान सकते हैं। फिर गुरुमुखी जिसमें श्री गुरुग्रंथ साहिब लिखा गया है, देवनागरी से अपेक्षाकृत कम प्रचलित है। अतः देवनागरी लिपि में प्रतिलिपिकारों से जितनी अशुद्धियों की संभावना हो सकती है उतनी गुरुमुखी लिपि की प्रतिलिपियों में नहीं।

गुरुमुखी लिपि में लिखे जाने पर भी कबीर के काव्य का व्याकरण पूर्वी हिंदी का रूप ही लिए हुए है। उसमें स्थान-स्थान पर पंजाबी प्रभाव अवश्य दृष्टिगत होता है किंतु प्रधान रूप से उसमें व्याकरण हमें पूर्वी हिंदी (अवधी) व्याकरण के रूप ही मिलते हैं। संस्कृत से आए हुए संज्ञा-प्रातिपदिकों (stems) के स्वरांत यद्यपि अवधी और पंजाबी में व्यंजनांत हो गए हैं तथापि पंजाबी में जो संयुक्त व्यंजन द्वित्व हो जाते हैं, वे अवधी में नहीं हैं।

^१आदि श्री गुरु ग्रंथ साहेब जी—मोहनसिंह वैद्य तरनतारन (अमृतसर) १६२७।

फिर भी कुछ पंजाबी प्रभाव उनकी भाषा पर दृष्टिगत होते ही हैं:—

किंतु ये सब प्रभाव कबीर की कविता पर गौण रूप से पड़े हैं उसी प्रकार जैसे कि खड़ी बोली और ब्रजभाषा के प्रभाव । प्रमुखतः कबीर की कविता पूर्वी हिंदी के रूप लिए हुए है और यह संत कबीर का देख कर आश्चर्य होता है कि पंजाबी भाषा की प्रस्तुत संस्करण धर्म पुस्तक श्री आदि गुरु ग्रंथ साहब में कबीर की कविता का पंजाबी संस्कार नहीं हुआ, वह अपने स्वाभाविक रूप में वर्तमान है । ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु अंगद जी ने तत्कालीन अधिक से अधिक प्रामाणिक पाठ संग्रह किया होगा और उसको उसी रूप में अपनी नवीन लिपि (जो लंडा लिपि का परिष्करण कर श्री गुरु ग्रंथ साहब में नियोजित की थी) में लिख दिया । यही बात हमें नामदेव जी के पदों में मिलती है जो श्री गुरु ग्रंथ साहब में हैं । नामदेव की भाषा मराठी है और गुरु ग्रंथ साहब में नामदेव की वाणी मराठी रूप ही में सुरक्षित है । अतः हम श्री गुरु ग्रंथ साहब में आए हुए कबीर के कविता-पाठ को अधिक से अधिक प्रामाणिक मानते हैं । खेद की बात है कि अभी तक हिंदी विद्वानों का ध्यान गुरु ग्रंथ साहब में कबीर के काव्य की ओर आकर्षित नहीं हुआ । संभवतः कारण यह हो कि उक्त ग्रंथ गुरुमुखी लिपि में है और उक्त लिपि से हिंदी भाषा-भाषियों का परिचय नहीं है । किंतु अब तो श्री भाई मोहनसिंह वैद्य ने खालसा प्रचारक प्रेस तरनतारन (पंजाब) से और सर्व हिंद सिख मिशन ने अमृत प्रिंटिंग प्रेस, अमृतसर से देवनागरी लिपि में श्री गुरु ग्रंथ साहब का प्रकाशन किया है । नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित कबीर ग्रंथावली के परिशिष्ट में श्री श्यामसुन्दरदास ने श्री गुरु ग्रंथ साहब में आए हुए कबीर के पदों को उद्धृत अवश्य किया है किंतु उसमें कुछ पद छूट गए हैं । श्री गुरु

ग्रंथ साहब में कबीर की साखियों (सलोकों) की संख्या २४३ है। कबीर ग्रंथावली में केवल १६२ है। श्री गुरु ग्रंथ साहब में कबीर की पद-संख्या २२८ है, कबीर ग्रंथावली में केवल २२२ है। इस प्रकार कबीर ग्रंथावली में ३६ साखियाँ (सलोक) और ६ पद नहीं हैं जो श्री गुरु ग्रंथ साहब में हैं। मैंने 'संत कबीर' का सम्पादन श्री गुरु ग्रंथ साहब के पाठ के अनुसार ही बड़ी सावधानी से किया है। इसमें कबीर का काव्य पाठ्य-भाग और संख्या की दृष्टि से ठीक ठीक प्रस्तुत किया गया है। अतः कबीर की काव्य सम्बन्धी सभी सामग्री को देखते हुए 'संत कबीर' के पाठ को अधिक से अधिक प्रामाणिक समझना चाहिए।

षट्त्रहवीं शताब्दी में मध्यदेश एक नवोन युग की प्रतीक्षा कर रहा था। उसकी संस्कृति को एक आघात लगा था और उसके आदर्श सँतहरो का रूप ले रहे थे। मुसलमान शासकों के कबीर का परिचय बढ़ते हुए प्रभाव ने इस्लाम को जितनी अधिक शक्ति दी, उतनी ही अधिक व्यापकता भी। जनता के संपर्क में यह नया विश्वास दुर्निवार रूप से उसके जीवन के चारों ओर दृढ़ गया। हिंदू धर्म इस्लाम को अन्य विदेशी धर्मों की भाँति आत्म-सात् न कर सका क्योंकि इस्लाम सत्ता के माथे उठा था और उसकी प्रार्थना हिंदुओं के प्रति निर्गोपशील थी। हिंदू और मुसलमानों के संस्कारों की इस विषमता ने धार्मिक वातावरण में एक अशांति उत्पन्न कर दी थी। अनेक हिंदू मुसलमान हो गए थे और अनेक अपनी सत्ता-निष्ठता में संशय थे। एक शरीर में जैसे दो प्राण हो जिनमें निरंतर संघर्ष होता हो।

इस समय अपने व्यावहारिक रूप में गमल हो, उममें आचार की दृष्टिगत परंपराएँ न हो, उने राज्य-निरक्षण प्राप्त हो और उगे अंगी-कार करने पर पदार्थिक का ऐश्वर्य प्राप्त हो, फिर भी जिनकी

शिराओं में हिंदू दर्शन और शास्त्र की सूक्तियों ने रक्त वन कर प्राण-संचार किया हो उसे इस्लाम का सामीप्य शरीर पर उठे हुए व्रण की भांति कष्टकर क्यों न होता ?—फिर शासकों पर छाए हुए उलमाओं के प्रभाव ने—जो फ़ीरोज और सिकन्दर पर विशेष रूप से था—जिस धार्मिक असहिष्णुता को जन्म दिया था, वह पद-पद पर सांप्रदायिकता की आग लगा रही थी। एक ओर तो राजनीति की निरंकुशता भय और आतंक की सृष्टि करती दूसरी ओर सूक्तियों की शांतिप्रिय और आध्यात्मिक दृष्टि हिंदू और मुसलमानों को अपनी ओर आकर्षित करते हुये उन्हें इस्लाम में श्रद्धा रखने के लिये प्रेरित करता थी। ऐसी स्थिति में हिंदू और मुसलमानों में किसी प्रकार का धार्मिक समझौता होना आवश्यक था। दोनों को एक ही देश में निवास करना था। दोनों में से एक भी अपना अस्तित्व खोने के लिए तैयार न था। विग्रह की नीति से दोनों की उन्नति का मार्ग बंद था। अतः एक धार्मिक समझौते के लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं और मध्यदेश में एक नवीन युग का निर्माण हुआ। उस युग का सूत्रपात करने में संत कबीर का प्रमुख हाथ था।

जो लोग हिंदू धर्म का शास्त्रीय ज्ञान रखते थे उन्हें तो धर्म की वास्तविक पहिचान थी। वे कट्टरता से अपने धर्म का समर्थन करते थे और प्राणों के भय से भी धर्म-परिवर्तन के लिये तैयार न थे किंतु जो लोग धर्म को केवल जीवनगत विश्वास के रूप में मानते थे, जिन्हें धर्म की गूढ़ बातों से परिचय नहीं था, जो सांस्कृतिक आदर्शों का ज्ञान नहीं रखते थे उनके धर्म-परिवर्तन का प्रश्न विशेष महत्त्व नहीं रखता था। फिर पदाधिकार का प्रलोभन कबीर का महत्त्व एवं भौतिक जीवन का ऐश्वर्य उन्हें किसी भी धर्म की ओर आकर्षित कर सकता था, चाहे वह धर्म इस्लाम हो अथवा अन्य कोई। ऐसी जनता को अपने धर्म पर

शिराओं में हिंदू दर्शन और शास्त्र की सूक्तियों ने रक्त वन कर प्राण-संचार किया हो उसे इस्लाम का सामीप्य शरीर पर उठे हुए व्रण की भांति कष्टकर क्यों न होता ?—फिर शासकों पर छाए हुए उलमाओं के प्रभाव ने—जो फ़ीरोज और सिकन्दर पर विशेष रूप से था—जिस धार्मिक असहिष्णुता को जन्म दिया था, वह पद-पद पर सांप्रदायिकता की आग लगा रही थी। एक ओर तो राजनीति की निरंकुशता भय और आतंक की सृष्टि करती दूसरी ओर सूक्तियों की शांतिप्रिय और आध्यात्मिक दृष्टि हिंदू और मुसलमानों को अपनी ओर आकर्षित करते हुये उन्हें इस्लाम में श्रद्धा रखने के लिये प्रेरित करता थी। ऐसी स्थिति में हिंदू और मुसलमानों में किसी प्रकार का धार्मिक समझौता होना आवश्यक था। दोनों को एक ही देश में निवास करना था। दोनों में से एक भी अपना अस्तित्व खोने के लिए तैयार न था। विग्रह की नीति से दोनों की उन्नति का मार्ग बंद था। अतः एक धार्मिक समझौते के लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं और मध्यदेश में एक नवीन युग का निर्माण हुआ। उस युग का सूत्रपात करने में संत कबीर का प्रमुख हाथ था।

जो लोग हिंदू धर्म का शास्त्रीय ज्ञान रखते थे उन्हें तो धर्म की वास्तविक पहिचान थी। वे कट्टरता से अपने धर्म का समर्थन करते थे और प्राणों के भय से भी धर्म-परिवर्तन के लिये तैयार न थे किंतु जो लोग धर्म को केवल जीवनगत विश्वास के रूप में मानते थे, जिन्हें धर्म की गूढ़ बातों से परिचय नहीं था, जो सांस्कृतिक आदर्शों का ज्ञान नहीं रखते थे उनके धर्म-परिवर्तन का प्रश्न विशेष महत्त्व नहीं रखता था। फिर पदाधिकार का प्रलोभन कबीर का महत्त्व एवं भौतिक जीवन का ऐश्वर्य उन्हें किसी भी धर्म की ओर आकर्षित कर सकता था, चाहे वह धर्म इस्लाम हो अथवा अन्य कोई। ऐसी जनता को अपने धर्म पर

समर्थ हो सकते थे। साधारण जनता धर्म के शास्त्रीय ज्ञान से संपर्क रखने में अपने को अयोग्य पाती थी। अतः धार्मिक सिद्धांतों को जनता के समीप तक उन्हीं की भाषा में पहुँचाने का श्रेय कबीर को है। रामानंद की शक्ति का आश्रय लेकर कबीर ने साधारण भाषा के द्वारा अपने मार्मिक सिद्धांतों को अत्यंत स्पष्ट रूप में जनता के सामने रक्खा। उस समय भाषा बन रही थी। मध्यदेश की भाषा में उस समय साहित्य की रचना नहीं के बराबर थी। अमीर खुसरो की पहेलियाँ जीवन के किसी गंभीर तथ्य का निरूपण नहीं कर सकी थीं, उनमें केवल मनोरंजन और कौतूहल था। नाथ संप्रदाय की रचनाओं में भी भाषा का माध्यम लिया गया किंतु वे समस्त रचनाएँ प्रश्नोत्तर के रूप में होकर केवल सिद्धांतोक्तियाँ ही बन कर रह गईं। यदि कहीं वर्णन भी है तो वह उपासना पद्धति के नीरस विशिष्ट रूपकों में। कबीर ने सब से पहले भाषा में जीवन की जटिल समस्याओं को सुलभाया और धर्म और दर्शन के ऐसे सिद्धांत निरूपित किए जो सरलता से जनता द्वारा हृदयंगम किए जा सकते थे। यह मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि नाथपंथ की विचार-शैली और रूपक-रहस्य का प्रभाव कबीर पर विशेष रूप से पड़ा है। उन्होंने सिद्धांत और वाक्य भी नाथ-पंथ से प्राप्त किए हैं किंतु कबीर नाथपंथ के आदर्शों तक ही नहीं रुक गए उन्होंने नाथपंथ से प्राप्त की गई सामग्रियों को अधिक व्यावहारिक और जन-सुलभ बनाने की चेष्टा की। जीवन के अंग-प्रत्यंग की समीक्षा कर उन्होंने धर्म और जीवन को इतना सरल और सुगम साधना-संपन्न बनाया कि वह प्राणों में निवास करने योग्य बन गया। यह प्रचार उन्हें जनता के बीच करना था। अतः स्पष्ट और शक्ति-संपन्न शैली ही इस उद्देश्य के उपयुक्त थी। जो कबीर के काव्य की तुलना तुलसी के काव्य से करना चाहते हैं उन्हें तत्कालीन भाषा और जनता की मनोवृत्ति नहीं भूल जानी चाहिए। कबीर को साहित्यिक भाषा का

शिलान्यास करना था और अन्यवस्थित धार्मिक विषमता के प्रथम आघात को रोकने का प्राचीर खड़ा करना था। काव्य के अंगों का सुकुमार सौंदर्य जनता के जर्जरित विश्वासों को आकर्षित न कर सकता था। प्रेम और आख्यानक काव्य की प्रशस्त परंपरा ने तुलसी की अनेक कठिनाइयाँ हल कर दी थीं और वे अपने आदर्शों और घटना-सूत्रों को अधिक काव्य-सौंदर्य और प्रतिभा-पटों से सुसजित कर सकते थे। कबीर ने अपनी प्रखर भाषा और तीखी भाव-व्यंजना से जिस काव्य का सृजन किया वह साहित्यिक मर्यादा का अतिक्रमण भले ही कर गया हो किंतु उसके द्वारा साहित्य और धर्म में युगांतर अवश्य आया। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की सांप्रदायिक सीमा तोड़ कर उन्हें एक ही भावधारा में बहा ले जाने का अपूर्व बल कबीर के काव्य में था। और यह बल जनता के बीच बोली और समझी जाने वाली रूखी और अपरिष्कृत भाषा के ऊपर अवलंबित था जिसमें धार्मिक पाखंडों और अंधविश्वासों को तोड़ने का विद्युत-वेग था। जहाँ भारतीय समाज में हिंदू और मुसलमानों के बीच बंधुत्व भाव का अंकुर उत्पन्न करना कबीर का अभिप्राय था वहाँ व्यक्तिगत साधना की पुनीत अनुभूति भी उनका लक्ष्य था। अपने स्वाधीन और निर्भीक विचारों से उन्होंने सुधार के नवीन मार्ग की ओर संकेत किया। उनकी सम-दृष्टि ने ही उन्हें सार्वजनीन और सार्वभौमिक बना दिया।

कबीर के इस काव्य में जो जीवन संबंधी सिद्धांत हैं उनका आधार शास्त्रीय ग्रंथ नहीं हैं। उन्होंने इन सिद्धांतों को अनुभूत अथवा दैनिक जीवन में प्रतिदिन घटित होने वाली परिस्थितियों के प्रकाश में ही लिखा है। उनके तर्क दर्शन-सम्मत न हों किंतु वे सहज ज्ञान से ओत-प्रोत हैं। नम्र घूमने से यदि योग मिलता तो वन के सभी मृग मुक्त हो जाते। सिर का मुंडन कराने से यदि सिद्धि पाई जा सकती तो मुक्ति की ओर भेड़ क्यों न चली गई? इस प्रकार के तर्क पंडित और

शास्त्रियों द्वारा मान्य नहीं हो सकते तथापि जनता के हृदय में सत्य और विश्वास की अमिट रेखा खींच सकते हैं क्योंकि इस प्रकार के तर्क उनके अनुभव से दूर नहीं हैं। इसलिए जहाँ शास्त्रियों और समाज के उच्च वर्ग के व्यक्तियों में कबीर के सिद्धांतों के लिए आदर नहीं है, वहाँ साधारण जनता समस्त श्रद्धा-संपत्ति से उन सिद्धांतों का गीत गाती है। कबीर ने इन्हीं अनुभूत सिद्धांतों और जीवन की वास्तविकताओं द्वारा अपने काव्य को श्री-संपन्न किया है। पुस्तक-ज्ञान की अपेक्षा वे अनुभव-ज्ञान को अधिक महत्त्व देते हैं। पुस्तक-ज्ञान से तो अहंकार का विष उत्पन्न होता है किंतु जीवन के सहज ज्ञान से संतोष और विश्वास का मधुर रस मन में संचरित होने लगता है।

जीवन-वृत्त की आलोचना

कबीर ने अपने व्यक्तिगत निर्देशों में कोई तिथि या संवत् का उल्लेख नहीं किया। अतः अंतर्साक्ष्य से हम उनके आविर्भाव काल अथवा निधन-काल के संबंध में कुछ भी नहीं कह सकते। उनका जन्म ऐसे जुलाहे कुल में हुआ था जिसमें उनके संत-जीवन के लिए विशेष सुविधाएँ थीं। कबीर ने अपने पिता को एक बड़ा गोसाईं कहा है। बनारस और उसके आसपास उस समय के गोसाईं 'दसनामी' भेद से अपनी उपासना में कहीं शिव और कहीं विष्णु के भक्त होते थे। कबीर के पिता ऐसी जुलाहा जाति में थे जिसमें मुसलमानी संस्कारों के साथ ही साथ शिवोपासक योगियों के भी संस्कार थे और वे किसी शिवोपासक 'दसनामी' संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण गोसाईं कहलाते थे। इस समय नाथपंथ का प्रभाव इन योगियों पर विशेष रूप से था जिससे वे 'शरीर-साधन' की परंपरा में विश्वास रखते थे। कबीर ने अपने पिता का निर्देश करते हुए यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि "मैं उस पिता की बलि जाता हूँ जिनसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ।

उन्होंने पंच (इंद्रियो) से मेरा माथ जुड़ा दिया है, अब मैंने पंच (इंद्रियों के विप) को मार कर पैरों के नीचे दबा दिया है” अतः यह स्पष्ट है कि कबीर के पिता जुलाही की जाति में होकर भी योगियों के आचारों में विश्वास रखते थे। इस संबंध में भी श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत से सहमत हूँ जिनके अनुसार कबीर जिस जुलाहा वंश में पालित हुए थे वह इसी प्रकार के नाथ मतावलंबी गृहस्थ योगियों का मुसलमानी रूप था। योगियों की परम्परा में होने के कारण कबीर के कुल में ‘राम’ नाम के लिए विशेष श्रद्धा न होगी इसलिए जब रामानंद के प्रभाव से कबीर ने राम-नाम स्वीकार किया होगा तो उनकी माता का क्रोध होना स्वाभाविक था।

कबीर के जन्म के विषय में जो किंवदंती है कि वे विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे और उस विधवा ब्राह्मणी ने लोक-लज्जा की रक्षा के लिए उन्हें लहरतारा तालाब के समीप फेंक दिया था तथा इस अवस्था में उन्हें नीरु और नीमा जुलाहा-दंपति ने उठा लिया था, कोई विशेष महत्त्व नहीं रखती। हमारे सामने इस प्रकार का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। इसी भाँति उनका ज्योति-स्वरूप होकर लहरतारा के कमल-पत्र पर उतर कर शयन करना एक धार्मिक विश्वास है। इस संबंध में कुछ भी कहना कबीर-पंथियों की धार्मिक भावना पर आघात पहुँचाना है।

कबीर का जन्म-स्थान अभी तक ‘काशी’ माना जाता रहा है और इस संबंध में प्रायः ये पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—‘काशी में हम प्रकट भये हैं, रामानंद चिताए।’ किंतु ये पंक्तियाँ न तो ‘संत कबीर’ में हैं और न किसी प्रामाणिक पोथी में ही पाई जाती हैं। ‘संत कबीर’ में कबीर की एक पंक्ति ऐसी है जिससे ज्ञात होता है कि वे मगहर में ही उत्पन्न हुए थे। पहले दरसन मगहर पाइअँ पुनि कासी बसे आई।’ (राग रामकली ३) यथेष्ट संकेतपूर्ण है। मृत्यु के समय

उनका मगहर लौट जाना मनुष्य की उस स्वाभाविक प्रेरणा का भी प्रतीक हो सकता है जिससे वह अपनी जन्मभूमि या उसके समीप ही आकर मरना चाहता है। अतः मेरे दृष्टिकोण से कबीर का मगहर में जन्म मानना अधिक युक्तिसंगत है।

कबीर के पारिवारिक जीवन के संबंध में मतभेद है। कबीरपंथी साधुओं का कथन है लोई उनकी शिष्या मात्र थी, स्त्री नहीं। वह एक बनखंडी वैरागी की पोष्य पुत्री थी जिसे उसने लोई (ऊनी चादर) में लिपटा हुआ पाया था। कबीर की भक्ति और निस्पृह भावना देखकर वह उनके साथ रहने लगी थी। किंतु कबीर की 'मेरी बहुरिया को धनिया नाउ' (राग आशा ३३) और 'बूढ़ा वंसु कबीर का उपजिओ पूतु कमालु' (सलोक ११५) निश्चित रूप से सिद्ध करते हैं कि कबीर का पारिवारिक जीवन स्त्री और पुत्र से भरभूर था। उनसे चाहे कबीर को संतोष न रहा हो, यह दूसरी बात है। 'धनिया' नाम के स्थान पर हमें 'धोई' नाम भी मिलता है जिसका संकेत श्री बनमाली जी 'कबीर का साखी ग्रंथ' की अवतरणिका में करते हैं।

कबीर ने जिस गुरु की विस्तार-पूर्वक-वन्दना की है वे श्री रामानंद जी ही थे। कबीर को अपने निर्भीक धार्मिक विश्वासों के कारण सिकंदर लोदी से भी संघर्ष लेना पड़ा। इस विषय की यथेष्ट चर्चा कबीर की जन्म-तिथि के संबंध में हो चुकी है अतः यहाँ कुछ और लिखने की आवश्यकता नहीं। कबीर की मृत्यु के संबंध में भी निश्चित है कि उन्होंने मगहर में जाकर अपना शरीर-त्याग किया।

सिरी रागु

१

एक सुआनु कै घरि गावणा ।
जननी जानत सुतु बडा होतु है
इतनाकु न जानै जि दिन दिन अवध घटतु है ॥
मोर मोर करि अधिक लाडु धरि पेखत ही जमराउ हसै ॥
ऐसा तैं जगु भरमि लाइआ ।
. कैसे वूमै जब मोहिआ है माइआ ॥१॥
कहत कवीर छोड़ि बिखिआ रस
इतु संगति निहचउ मरणा ॥
रमईआ जपहु प्राणी अन्त जीवण
वाणी इन विधि भव सागर तरणा ॥२॥
जां तिसु भावै ता लागै भाउ ।
भरमु भुलावा बिचहु जाइ ।
उपजै सहजु गिआन मति जागै ।
गुरु प्रसादि अंतरि लिव लागै ॥
इतु संगति नाही मरणा ।
हुकुमु पढ़ाणि ता खसमै मिलणा ॥३॥

२

अचरज एकु सुनहु रे पंढीआ
अब किछु कहनु न जाई ।
सुरि नर गण रांघव जिनि मोहे
त्रिभवण मेखुली लाई ॥
राजा राम अनहद किंगुरी वाजै
जाकी दिसटि नाद लिव लागै ॥१॥

भाठी गगनु सिंढिआ अरु चुंइआ
 कनक कलस इकु पाइआ ।
 तिसु महि धार चुंइै अति निरमल
 रस महि रसन चुंइैआ ॥२॥
 एक जु वात अनूप वनी है
 पवन पिआला साजिआ ।
 तीनि भवन महि एको जोगी
 कहहु कवनु है राजा ॥३॥
 छैसे गिआन प्रगटिआ पुरखोत्तम
 कहु कवीर रंगि राता ।
 अउर हुनी सभ भरमि भुलानी
 मनु राम रसाइन माता ॥४॥

राग गउड़ी

१

अब मोहि जलत राम जलु पाइआ ।
 राम उदकि तनु जलतु बुझाइआ ॥
 मनु मारण कारणि बन जाईअै ।
 सो जलु बिनु भगवंत न पाईअै ॥१॥
 जिह पावक सुरि नर है जारे ।
 राम उदकि जन जलत उबारे ॥२॥
 भव सागर सुख सागर माही ।
 पीवि रहे जल निखुटत नाही ॥३॥
 कहि कबीर भजु सारिंगपानी ।
 राम उदकि मेरी तिखा बुझानी ॥४॥

२

माधउ जल की पियास न जाइ ।
 जल महि अगनि उठी अधिकाइ ॥
 तूं जलनिधि हउ जल का मीनु ।
 जल महि रहउ जलहि विनु खीनु ॥१॥
 तूं पिंजरु हउ सूअटा तोर ।
 जसु मंजारु कहा करै मोर ॥२॥
 तूं तरवरु हउ पंखी आहि ।
 मंदभागी तेरो दरसनु नाहि ॥३॥
 तूं सतिगुरु हउ नउतनु चेला ।
 कहि कबीर मिलु अंत की बेला ॥४॥

३

जब हम एको एकु करि जानिआ ।
 तब लोगह काहे दुखु मानिआ ॥

हम अपतह अपुनी पति मोहं ।
 हमरै खांजि परहु मति कोहं ॥१॥
 हस मंदं मंदं मन माही ।
 साम पाति काहू मिउ नाही ॥२॥
 पति अपति ताकी नहीं लाज ।
 तव जानहुगे जब उधरैगो पाज ॥३॥
 कहु कबीर पति हरि परवानु ।
 सरब तिआगि भजु केवल रामु ॥४॥

४

अचर मूए किया खोगु करीजै ।
 तउ कीजै जउ आपन जीजै ॥
 मै न मरउ मरिदो संसारा ।
 अब महि मिलिओ है जीआवन हारा ॥१॥
 ह्या देही परमल महकंदा ।
 ता सुख विसरे परमानंदा ॥२॥
 कृअटा एकु पंच पनिहारी ।
 दूटी लाजु भरै मति हारी ॥३॥
 कहु कबीर हक बुधि घीचारी ।
 ना ओहु कृअटा ना पनिहारी ॥४॥

५

असथावर जंगम कीट पतंगा ।
 अनिक जनम कीए बहु रंगा ॥
 औसे घर हम बहुतु पसाए ।
 जब हम राम गरभ होइ थाए ॥१॥
 जोगी जती पती ब्रहमचारी ।
 कबहु राजा छत्रपति कबहु भेखारी ॥२॥

संत कबीर

साकत मरहि संत सभि जीवहि ।
 राम रसाइनु रसना पीवहि ॥३॥
 कहु कबीर प्रभ किरपा कीजै ।
 हारि परे अब पूरा दीजै ॥४॥

६

असो अचरजु देखिओ कबीर ।
 दधि कै भो लै विरोलै नीरु ॥ १ ॥
 हरि अंगूरी गदहा चरै ।
 नित उठि हासै हीनै मरै ॥१॥
 माता भैसा अमुहा जाइ ।
 कुदि कुदि चरै रसातलि पाइ ॥२॥
 कहु कबीर परगटु भई खेड ।
 लेले कउ चूवै नित भेड ॥३॥
 राम रमत मति परगटी आई ।
 कहु कबीर गुरि सोझी पाई ॥४॥

७

जिउ जल छोडि बाहरि भइओमीना ।
 पूरब जनम हउ तप का हीना ॥
 अब कहु राम कवन गति मोरी ।
 तजीले बनारस मति भई थोरी ॥१॥
 सगल जनमु सिवपुरी गवाइआ ।
 मरती वार मगहरि उठि आइआ ॥२॥
 बहुतु बरस तपु कीआ कासी ।
 मरनु भइआ मगहर की वासी ॥३॥
 कासी मगहर सम बीचारी ।
 ओछी भगति कैसे उत्तरसि पारी ॥४॥

संत कबीर

कहु गुर राजि खिय सभु को जानै ।
मुआ कबीर रमत ची रामै ॥२॥

८

चोआ चंदन मरदन अंगा ।
सो तनु जलै काठ कै संग्गा ॥
इसु तन धन की कवन बटाई ।
धरनि परै उरवारि न जाई ॥१॥
राति जि सोवहि दिनकरहि काम ।
इकु खिनु लेहि न हरि को नाम ॥२॥
हाथिस्तंडार सुखि खाइओ तंदोर ।
मरती बार कसि बाधिओ चोर ॥३॥
गुरमति रसि रसि हरि गुन गावै ।
रामै राम रमत सुख पावै ॥४॥
किरपा करि कै नासु द्विदाई ।
हरि हरि वासु सुगंध बसाई ॥५॥
कहत कबीर चेति रे अंधा ।
सति रासु भूठा सभु धंधा ॥६॥

९

जम ते उलटि भए है राम ।
दुख बिनसे मुख कीओ बिसराम ॥
वैरी उलटि भए है मीता ।
साकत उलटि सुजन भए चीता ॥
अव मोहि सरब कुसल करि मानिआ ।
सांति भई जब गोबिंदु जानिआ ॥१॥
तन महि होती कोटि उपाधि ।
उलटि भई सुख सहजि समाधि ॥

आपु पछानै आपै आप ।
 रोगु न विश्वापै तीनों ताप ॥२॥
 अब मनु उलटि सनातनु हूआ ॥
 तब जानिआ जय जीवत भूआ ॥
 कहु कवीर सुखि सहजि समावउ ।
 आपि न डरउ न अवर डरावउ ॥३॥

१०

पिंढि मुअै जीउ किह घरि जाता ।
 सबदि अतीति अनाहदि राता ॥
 जिनि रामु जानिआ तिनहि पछानिआ ।
 जिउ गुंगे साकरु मनु मानिआ ॥१॥
 अैसा गिआनु कथै बनचारी ।
 मन रे पवन द्विड सुखमन नारी ॥
 सो गुरु करहु जि बहुरि न करना ।
 सो पदु रवहु जि बहुरि न रवना ॥
 सो धिआनु धहुरि जि बहुरि न धरना ।
 ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥२॥
 उलटी रांगा जमुन मिलावउ ।
 बिनु जक संगम मन सहि न्हावउ ॥
 लोचा समसुरि इहु बिउहारा ।
 ततु बीचारि किआ अवरि बीचारा ॥३॥
 अपु तेजु वाइ प्रिथमी अकासा ।
 ऐसी रहत रहउ हरि पासा ॥
 कहै कवीर निरंजन धिआवउ ।
 तितु घरि जा जि बहुरि न आवउ ॥४॥

११

सुख मांगत दुख आन आये ।
 सो सुख हमहु न मांगिआ भाये ॥
 बिखिआ अजहु सुरति मुग आसा ।
 कैसे होई है राजा राम निवासा ॥१॥
 इसु मुख तै सिय ब्रह्म दराना ।
 सो सुख हमहु साजु करि जाना ॥२॥
 सनकादिक नारद मुनि सेखा ।
 तिन भी तन महि मनु नही पेखा ॥३॥
 इसु मन कउ कोई खोजहु भाई ।
 तन छूटै मनु कहा समाई ॥४॥
 गुर प्रसादी जैदेउ नामां ।
 भगति कै प्रेमि इनही है जाना ॥५॥
 इसु मन कउ नही आवन जाना ।
 जिसका भरमु गइथा तिनि साजु पढ़ाना ॥६॥
 इसु मन कउ रूपुन रेखिआ काई ।
 हुकमे होइथा हुकमु बूझि समाई ॥७॥
 इस मन का कोई जानै भेउ ।
 इह मनि लीण भए सुखदेउ ॥८॥
 जीउ पृथु अरु सगल सरीरा ।
 इसु मन कउ रहि रहे कबीरा ॥९॥

१२

अहिनिनि एक नाम जो जागे ।
 केतक सिध भए लिव लागे ॥
 साधक सिध सगल मुनि हारे ।
 एक नाम कलिप तर तारे ॥१॥

जो हरि हरे सु होहि न आना ।
कहि कबीर राम नाम पढ़ाना ॥२॥

१३

रे जीअ निलज लाज तुहि नाही ।
हरि तजि कत कहू के जांही ॥
जाको ठाकुरु ऊचा होई ।
सो जनु पर घर जात न सोही ॥१॥
सो साहिबु रहिया भरपूरि ।
सदा संगि नाही हरि दूरि ॥२॥
कवला चरन सरन है जा के ।
कहु जन का नाही घर ता के ॥३॥
समु कोऊ कहै जासु की याता ।
सो संअथु निज पति है दाता ॥४॥
कहै कबीर पूरन जग सोई ।
जाकै हिरदै अवरु न होई ॥५॥

१४

कउनु को पूतु पिता को का को ।
कउनु मरै को देइ संतापो ॥
हरि ठग जग कउ ठगउरी लाई ।
हरि के बिअोग कैसे जीअउ मेरी माई ॥१॥
कउन को पुरखु कउन की नारी ।
इआ तत लेहु सरीर बिचारी ॥२॥
कहि कबीर ठग सिउ मनु मानिया ।
गई ठगउरी ठगु पहिचानिया ॥३॥

१५

अथ सो कउ भए राजा राम सदाई ।
 जनम मरन कटि परम गति पाई ॥
 साधू संगति दीओ रलाइ ।
 पंच दूत ते लीओ छटाइ ।
 अंगित नामु जपउ जपु रसना ।
 अमोल दासु करि लीनो अपना ॥१॥
 सतिगुर कीनो पर उपकार ।
 काढि लीन सागर संसार ॥
 चरन कमल सिउ लागी प्रीति ।
 गोविंदु बसै नित नित चीत ॥२॥
 माइआ तपति बुकिआ अंगिआर ।
 मनि संतोखु नामु आघार ॥
 जलि थलि पूरि रहे प्रभ सुआमी ।
 जत पेखउ तत अंतरजामी ॥३॥
 अपनी भगति आप ही दिडाई ।
 पूरव लिखतु मिलिआ जेरे भाई ॥
 जिसु क्रिपा करे तिसु पूरन साज ।
 कबीर को सुआमी गरीबनिवाज ॥४॥

१६

जलि है सूतकु थल है सूतकु सूतक ओपति होई ।
 जनमे सूतकु मूए फुनि सूतकु सूतक परज बिगोई ॥
 कहु रे पंडीआ कउन पवीता ।
 औसा गिआनु जपहु मेरे सीता ॥१॥
 नैनहु सूतकु बैनहु सूतकु सूतकु खवनी होई ।
 ऊठत बैठत सूतकु लागे सूतकु परै रसोई ॥२॥

फासन की विधि सभु कोऊ जानै छूटन की इकु कोई ।
कहि कबीर रामु रिदै बिचारै सूतकु तिनहै न होई ॥३॥

१७

भगारा एकु निवेरहु राम ।
जउ तुम अपने जन सौ कामु ॥
इहु मनु बड़ा कि जा सउ मनु मनिआ ।
रामु बड़ा कै रामहिं जानिआ ॥१॥
ब्रहमा बड़ा कि जासु उपाइआ ।
देहु बड़ा कि जहां ते आइआ ॥२॥
कहि कबीर हउ भइआ उदासु ।
तीरथु बड़ा कि हरि का दासु ॥३॥

१८

देखौ भाई ज्ञान की आई आंधी ।
सभै उडानी भ्रम की टाटी रहै न माइआ बांधी ॥
दुचिते की दुइ थूनि गिरानी मोहु बल्लेबा दूटा ।
तिसना छानि परी घर उपरि दुरमति भौंटा फूटा ॥१॥
आंधी पाछै जो जलु वरखै तिहि तेरा जनु भीनां ।
कहि कबीर मनि भइआ प्रगासा उँदै भानु जब चीना ॥२॥

१९

हरि जसु सुनहि न हरि गुन गावहि ।
वातन ही असमानु गिरावहि ॥
ऐसे लोगन सिउ किआ कहीअै ।
जो प्रभ कीए भगति ते बाहज तिन ते सदा दराने रहीअै ॥१॥
आपि न देहि सुरु भरि पानी ।
तिह निंदहि जिह गंगा आनी ॥२॥

बैठत उठत कुटिलता चालहि ।
 आपु राग अउरन हू घालहि ॥३॥
 छाटि कुचरचा आन न जानहि ।
 ब्रह्मा हू को कहियो न मानहि ॥४॥
 आपु राग अउरन हू खोवहि ।
 आगि लगाइ मंदर मै सोवहि ॥५॥
 अवरन हसत आप हहि काने ।
 तिन कउ देखि कबीर लजाने ॥६॥

२०

जीवत पितर न साने कोऊ मूएँ सराध कराही ।
 पितर भी बपुरे कहु किउ पावहि कऊआ कूकर खाही ।।
 मो कउ कुसलु बतावहु कोई ।
 कुसल कुसलु करवे जगु बिनसै कुसलु भी कैसे होई ॥१॥
 माटी के करि देवी देवा तिसु आगै जीउ देही ।
 ऐसे पितर तुमारे कहीअहि आपन कहिआ न लेही ॥२॥
 सरजीउ काटहि निरजीउ पूजहि अंतकाल कउ भारी ।
 राम नाम की गति नही जानी भै हूवे संसारी ॥३॥
 देवी देवा पूजहि डालहि पारब्रह्म नही जाना ।
 कहत कबीर अकुलु नही चेतिआ बिखिआ सिउ लपटाना ॥४॥

२१

जीवत मरै मरै फुनि जीवै ऐसे सुनि समाइआ ।
 अंजन माहि निरंजनि रहीअै बहुदि न भव जलि पाइआ ॥
 मेरे राम ऐसा खीरुविलोईअै ॥
 गुर मति मनूआ असथिरु राखहु इनि बिधि अंजितु पीओईअै ॥१॥
 गुर कै बाणि वजर कल छेदी प्रगटिआ पदु परगासा ।
 सकति अधेर जेवदी अमुं चूका निहचलु सिव घरि बासा ॥२॥

तिनि धिनु याणै धनखु चढाइअै इहु जगु वेधिआ भाई ।
दह दिस वूडी पवन मुलावै डोरि रही लिच लाई ॥३॥
उनमनि मनूआ सुंनि समाना दुविधा दुरमति भागी ।
कहु कबीर अतभउ इहु देखिआ राम नामि लिच लागी ॥४॥

२२

उलटत पवन चक्र खटु भेदे सुरति सुंन अगारागी ।
आवै न जाइ मारै न जीवै तासु खंजु वैरागी ॥
मेरे मन मन ही उलटि समाना ।
गुर परसादि अकलि भई अवरे न तरु था वेगाना ॥१॥
निवरै दूरि दूरि फुनि निवरै जिन जैसा करि मानिआ ।
अलउती का जैसे भइआ घरेडा जिनि पीआ तिनि जानिआ ॥२॥
तेरी निरगुन कथा काइ सिउ कहिअै शैसा कोइ बिथेकी ।
कहु कबीर जिनि दीआ पलीता तिनि तैसी मल देखी ॥३॥

२३

तह पावस सिंधु धूप नही छहीआ तह उतपति परलउ नाही ।
जीवन मिरतु न दुखु सुखु बिआपै सुन समाधि दोऊ तह नाही ॥
सहज की अकथ कथा है निरारी ।
तुलि नही चढै जाइ न मुकाती हलुकी लगै न भारी ॥१॥
अरध उरध दोऊ तह नाही राति दिनसु तह नाही ।
जलु नही पवनु पावकु फुनि नाही सतिगुर तहा स साही ॥२॥
अगम अगोचरु रहै निरंतरि गुर किरपा ते लहीअै ।
कहु कबीर बलि जाउ गुर अपुने सत संगति मिलि रहीअै ॥३॥

२४

पापु पुंनु दुइ बैल विसाहे पवनु पूजी परगासिअो ।
त्रिसना गूणि भरी घट भीतरी इन बिधि दांड विसाहिअो ॥

शैसा नाइकु रामु हमारा ।

सगल संसार किआं जनजारा ॥१॥

कामु मोधु दुइ भये जगाती मन तरंग बटवारा ।

पंच तनु मिलि दाजु निबरहि टांडा उतरियां पारा ॥२॥

कहत कबीर जुनहु रे संतहु अब शैसी यनि पाई ।

घाटी चढत बैलु इकु थाका चलो गोनि छिटकाई ॥३॥

२५

पेवकदै दिन चारि है साहुरदै जाणा ।

अंधा लोक न जाणाई मूरखु एआणा ॥

कहु डडीआ बाधै धन खड़ी ।

पाहु घरि आए मुकलाऊ आए ॥१॥

ओह जि दिसै खूहड़ी कउन लाजु वहारी ।

लाजु घड़ी सिउ तूटि पड़ी उठि चली पनिहारी ॥२॥

साहिबु होइ दइआलु क्रिपा करे अपुना कारजु सवारे ।

ता सोहागणि जाणीअै गुर सबदु बीचारे ॥३॥

किरत की बांधी सब फिरै देखहु बीचारी ।

एस नो किआ आखीअै किआ करै विचारी ॥४॥

भई निरासी उठि चली चित बंधि न धीरा ।

हरि की चरणी लागि रहु भजु सरणि कबीरा ॥५॥

२६

जोगी कहहि जोगु भल मीठा अवरु न दूजा भाई ।

हंछित मुंछित एकै सबदी एइ कहहि सिधि पाई ।

हरि विनु भरमि भुलाने अंधा ।

जा पहि जाउ आपु छुटकावनि ते बांधे बहु फंधा ॥१॥

जह ते उपजी तही समानी इहि विधि बिसरी तब ही ।

पंडित गुणी सूर हम दावे एहि कहहि बड हम ही ॥२॥

जिसहि बुझाए सोई बूझै बिनु बूझे किउ रहीअै ।
 सतिगुरु मिलै अंधेरा चूकै इन बिधि माणकु लहीअै ॥३॥
 तजि बावे दाहने बिकारा हरि पदु दिडु कार रहीअै ।
 कहु कबीर गूँगै गुडु खाइआ पूछे ते किआ कहीअै ॥४॥

२७

जह कलु अहा तहा किछु नाही पंच ततु तह नाही ।
 इडा पिगला सुखमन बंदे ए अवगन कत जाही ॥
 तागा तूटा गगनु बिनसि गइआ तेरा बोलतु कहा समाई ।
 एह संसा मो कउ अनदिनु विआपै मो कउ को न कहै समझाई ॥१॥
 जह बरभंडु पिंडु तह नाही रचनाहार तह नाही ।
 जोड़ण हारो सदा अतीता इह कहीअै किनु माही ॥२॥
 जोड़ी जुड़े न तोड़ी तूटै जब लगु होइ बिनासी ।
 का को ठाकुर का को सेवकु को काहू कै जासी ॥३॥
 कहु कबीर लिब लागि रही है जहां बसे दिन राती ।
 उआ का मरसु ओही पर जाने ओहु तउ सदा अविनासी ॥४॥

२८

सुरति सिन्नित दुइ कंनौ सुंदा परमिति बाहरि खिथा ।
 सुंन गुफा सहिआसणु बैसणु कलप विवरजित पंथा ॥
 मेरे राजन मै वैरागी जोगी ।
 मरत न सोग विश्रोगी ॥१॥
 खंड ब्रह्मंड सहि सिंदी मेरा बटूआ सभु जगु भसमाधारी ।
 ताड़ी लागी त्रिपलु पलटीअै घूटै होइ पसारी ॥२॥
 मनु पवनु दुइ तूँवा करीहै जुग जुग सारदसाजी ।
 थिरु भई तंती तूटसि नाही अनहद किगुरी बाजी ॥३॥
 सुनि मन मगन भए है पूरे माइआ डोल न लागी ।
 कहु कबीर ता कउ पुनरपि जनसु नही खेजि गइओ वैरागी ॥४॥

२६

गज नव गज दस गज इकीस पुरीआ एक तनाई ।
साठ मूत नव खंड बहतारि पाटु लगो अधिकाई ॥
गई बुनावन माहो ।

घर छोड़िअ जाइ जुलाहो ॥१॥
गजी न मिनीअै तोलि न तुलीअै पाचनु सेर अटाई ।
जौ करि पाचनु अंगि त पावै मारु करै घर हाई ॥२॥
दिनकी बैठ खसम की बरकस इह बेला कत आई ।
छूटे फूँटे भीगै पुरीआ चलिअो जुलाहो रीसाई ॥३॥
छोड़ी नली तंतु नही निकलै न तर रही उरमाई ।
छोडि पसारु पंहा रहु बपुरी कहु कवीर समझाई ॥४॥

३०

एक जोति एका मिली किंवा होइमहोइ ।
जितु घटि नामु न ऊपजै फूटि मरै जनु सोइ ।
सावल सुन्दर रामअैआ ।

मेरा मनु लागा तोही ॥१॥
साधु मिलै सिधि पाईअै कि एहु जोगु कि भोग ।
हुहु मिलि कारजु उपजै राम नाम संजोगु ॥२॥
लोगु जानै इहु गीतु है इहु तउ ब्रह्म बीचार ।
जिउ कासी उपदेसु होइ मानस मरती वार ॥३॥
कोई गावै को सुणै हरि नामा चितु लाइ ।
कहु कवीर संसा नही अंति परमगति पाइ ॥४॥

३१

जेवे जतन करत ते हूवे भव सागरु नही तारिअो रे ।
करम धरम करते बहु संजम अहं बुधि मनु जारिअो रे ॥

सास ग्रास को दातो ठाकुर सो किउ मनहु बिसारिओ रे ।
 हीरा लाल अमोलु जनमु है कउडी बदलै हारिओ रे ॥१॥
 त्रिसना त्रिखा भूख अमि लागी हिरदै नाहि बीचारिओ रे ।
 उनमन मान हिरिओ मन माही गुर का सवटु न धारिओ रे ॥२॥
 सुआद लुभत इंद्री रस प्रेरिओ मद रस लैत बिकारिओ रे
 करम भाग संतन संगाने कासट लोह उधारिओ रे ॥३॥
 धावत जोनि जनम अमि थाके अब दुख करि हम हारिओ रे
 कहि कबीर गुर मिलत महा रसु प्रेम भगति निससतारियो रे ।

३२

कालवृत की हसतनी मन बउरा रे चलतु रचिओ जगदीस ।
 काम सुआइ गज बसि परे मन बउरा रे अंकसु सहिओ सीस ॥
 बिखै वाचु हरि राचु समसु मन बउरा रे ।
 निरभै होइ न हरि भजे मन बउरा रे गहिओ न राम जहाजु ॥१॥
 मरकट मुसटी अनाज की मन बउरा रे लीनी हाथु पसारि ।
 छूटन को सहसा परिआ मन बउरा नाचिओ घर घर बारि ॥२॥
 जिउ नलनी सूअटा गहिओ मन बउरा रे माया इहु बिउहार ।
 जैसा रंगु कसुंभ का मन बउरा रे तिउ पसरिओ पासार ॥३॥
 नावन कउ तीरथ घने मन बउरा रे पूजन कउ बहू देव ।
 कहू कबीर छूटनु नही मन बउरा रे छूटनु छूटनु हरि की सेव ॥४॥

३३

अगनि न दहै पवनु नही मगनै तसकरु नेरि न आवै ।
 राम नाम धनु कारि संचउनी सो धनु कतही न जावै ॥
 हमरा धनु माघउ गोविंद धरणी धरु इहै सार धनु कहीअै ।
 जो सुखु प्रभ गोविंदु की सेवा सो सुखु राजि न लहीअै ॥१॥
 इसु धन कारणि तिव सनकादिक खोजत भए उदासी ।
 मनि मुकुंदु जिहवा नारइनु परै न जम की फासी ॥२॥

निज धनु गिआनु भराति गुर दीनी तासु सुमति मनु लागा ।
जलत अंभ थंभि मनु धावत भरम बंधन भउ भागा ॥३॥
कहै कबीर मदन के माते हिरदै देखु वीचारी ।
तुम घरि लाख कोटि अस्व हसती हम घरि एकु मुरारी ॥४॥

३४

जिउ कपि के कर मुसटि चनन की लुबधि न तिआगु दइओ ।
जो जो करम कीए लालच सिउ ते फिरि गरहि परिओ ॥
भगति बिनु बिरथे जनमु गइओ ।
साध संगति भगवान भजन बिनु कही न सचु रहिओ ॥१॥
जिउ उदिआन कुसम परफुलित किनहि न घाउ लइओ ।
तैसे भ्रमत अनेक जोनि महि फिरि फिरि काल हइओ ॥२॥
इया धन जोवन अरु सुत दारा पेखन कउ जु दइओ ।
तिन ही माहि अटक जो उरभे इंद्री प्रेरि लइओ ॥३॥
अउध अनल तनु तिन को मंदरु चहु दिस ठाटु ठइओ ।
कहि कबीर भै सागर तरन कउ मै सतिगुर ओट लइओ ॥४॥

६५

पानी मैला माटी गोरी ।
इस माटी की पुतरी जोरी ॥
मै नाही कहु आहि न मोरा ।
तनु धनु ससु रनु गोविंद तोरा ॥१॥
इस माटी महि पवनु समाइया ।
कूटा परपंचु जोरी चलाइया ॥२॥
किनहु लाग्य पांच की जोरी ।
अंन की चार गगरीया फोरी ॥३॥
कहि कबीर इक नांव उसारी ।
गिन महि बिनमि जाइ अहंकारी ॥४॥

३६

राम जपउ जीअरु औसे औसे ।
 भ्रु प्रहिलाद जपिअरु हरि जैसे ॥
 दीन दइआल भरोसे तेरे ।
 सभु परवारु चड़ाइआ वेड़े ॥१॥
 जा तिसु भावै ता हुकमु मनावै ।
 इस वेड़े कउ पारि लघावै ॥२॥
 गुर परसादि औली बुधि समानी ।
 चूकि गई फिरि आवनि जानी ॥३॥
 कहु कबीर भजु सारिगपानी ।
 उरवारि पारि सभ एको दानी ॥४॥

३७

जोनि छाड़ि जउ जग सहि आइअरु ।
 लागत पवन खसमु विसराइयो ॥
 जीअरा हरि के गुना गाउ ॥१॥
 गरभ जोनि सहि उरध तपु करता ।
 तउ जठर अगनि सहि रहता ॥२॥
 लख चउरासीह जोनि अमि आइअरु ।
 अब के छुटके ठउर न ठाइअरु ॥३॥
 कहु कबीर भजु सारिगपानी ।
 आवत दीसै जात न जानी ॥४॥

३८

पुरगवासु न बाछीअैं डरीअैं न नरकि निवासु ॥
 होना है सो होइ है मनहि न कीजै आस ॥
 रमईआ गुन गाईअैं जा ते पाइअैं परम निधानु ॥१॥

किआ जपु किआ तपु संजमो किआ वरतु किआ इसनानु ।
 जब लगु जुगति न जानीअै भाउ भगति भगवान ॥२॥
 संपै देखि न हरखीअै बिपति देखि न रोइ ।
 जिउ संपै तिउ बिपति है बिधने रचिआ सो होइ ॥३॥
 कहि कबीर अरु जानिआ संतन रिदै मम्कारि ।
 सेवक सो सेवा भले जिह घट बसे मुरारि ॥४॥

३६

रे मन तेरो कोइ नहीं खिचि लेइ जिनि भारु ।
 बिरख बसेरो पंखि को तैसो इहु संसारु ॥
 राम रसु पीआ रे जिह रस बिसरि गए रस अउर ॥१॥
 अउर मुण किआ रोईअै जउ आपा थिरु न रहाइ ।
 जो उपज सो बिनसि है दुखु करि रोवै बलाइ ॥२॥
 जह की उपजी तह रची पीवत मरदन लाग ।
 कहि कबीर चिति चेतिआ राम सिमरि वैराग ॥३॥

४०

पंथु निहारै कामनी लोचन भरी ले उसासा ।
 उर न भीजै पगु ना खियै हरि दरसन की आसा ॥
 उलहु न फागा कारे ।
 बेगि मिलीजै अपुने राम पिआरे ॥१॥
 कहि कबीर जीवन पद कारनि हरि की भगति करीजै ।
 पुरु आचार नाम नाराइन रखना रामु रचीजै ॥२॥

४१

आग पाम घन गुस्सी का बिरचा माक बनारसि साऊ रे ।
 उआ का मरुतुदंगि मोही गुआरनि मो कउ छोदि न आउन जाहू रे ॥
 मोहि चरन मनु लागो मारिगधर सो मित्त जो बड भागो रे ॥१॥

संत कबीर

बिंदावन मन हरन मनोहर क्रिसन चरावत गाऊ रे ।
जा का ठाकुर तुही सारिंगधर मोहि कबीरा नाऊ रे ॥२॥

४२

बिपल बसत्र केते है पहिरे किया बन मधे बासा ।
कहा भइआ नरदेवा धोखे किया जलि बोरिओ गिआता ॥
जीअ रे जाहिगा मैं जानां । अविगतु समझु इआना ।
जत जत देखउ बहुरि न पेखउ संगि माइआ लपटाना ॥१॥
गिआनी धिआनी बहु उपेसी इहु जगु सगलो धंधा ।
कहि कबीर इकराम नाम बिनु इआ जगु माइआ अंधा ॥२॥

४३

मन रे छाडहु भरमु प्रगटु होइ नाचहु इआ माइआ के डान्डे ।
सुरु की सनमुख रन ते बरपै सती कि सांचे भांडे ॥
खगमग छाडि रे मन बडरा ।
अब तउ जरे मरे सिधि पाईअै लीनो हाथि संधउरा ॥१॥
काम क्रोध माइआ के लीने इआ विधि जगनु बिगूता ।
कहि कबीर राजा राम न छोडउ सगल ऊच ते ऊचा ॥२॥

४४

फुरमानु तेरा सिरै ऊपरि फिरि न करत बीचार ।
तुही दरीआ तुही करीआ तुमै ते निसतार ॥
बंदे बंदगी इकतीआर ।
साहिबु रोसु धरउ कि पिआर ॥१॥
नामु तेरा आधार मेरा जिउ फूलु जई है नारि ।
कहि कबीर गुलामु घर का जीआइ भावै मारि ॥२॥

४५

लख चउरासी जीअ जोनि सहि अमृत नंदु यहु थाको रे ।
भगति हेति अवतारु लीओ है भाग बढो घपुरा को रे ॥

तुम जु कहत हउ नंद को नंदनु नंद सु नंदनु का को रे ।
 धरनि अकासु दसो दिस नाही तव इहु नंदु कहा थो रे ॥१॥
 संकटि नही परै जोनि नही आवै नामु निरंजन जा को रे ।
 कबीर को सुआमी शैसो ठाकुर जा कै माई न बापो रे ॥२॥

४६

निंदउ निंदउ मां कउ लोगु निंदउ ।
 निंदा जन कउ खरी पिआरी ॥
 निंदा बापु निंदा महतारी ।
 निंदा होइ त वैकुंठि जाईश्रै ।
 नामु पदारथु मनहि बसाश्रै ॥
 रिंद सुख जउ निंदा होइ ।
 हमरं कपरे निंदकु धोइ ॥१॥
 निंदा करै सु हमारा मीतु ।
 निंदकु माहि हमारा चीतु ॥
 निंदक मो जां निंदा होरै ।
 हमरा जीयनु निंदकु लोरै ॥२॥
 निंदा हमरी प्रेम पिआरु ।
 निंदा हमरा करै उधारु ॥
 जन कबीर कउ निंदा सारु ।
 निंदकु या हम उतरे पारि ॥३॥

रागु आसा

१

गुर चरण लागि हम बिनवत्ता पृष्ठत कह जीउ पाइआ ।
 कवन काजि जगु उपजै बिनसै कहहु मोहि समझाइआ ॥
 देव करहु दइया मोहि मारगि लावहु जितु भै बंधन तूटै ।
 जनम मरन दुख फेड़ करम सुख जीअ जनम ते छूटै ॥१॥
 माइआ फास बंध नही फारै अरु मन सुनि न लूके ।
 आपा पदु निरवाणु न चीन्हिआ इन विधि अभिउ न चूके ॥२॥
 कही न उपजै उपजी जाणै भाव अभाव विहूणा ।
 उदे असत की मनबुधि नासी तउ सदा सहजि लिव लीणा ॥३॥
 जिउ प्रतिबिंबु बिंब कउ मिली है उदक कुंभु विगराना ।
 कहु कबीर असा गुण अमु भागा तउ मनु सुनि समाना ॥४॥

२

गज साढ़े तै तै धोतीआ तिहरे पाइनि तग ।
 गली जिन्हा जपमालीआ लोटे हथि निबग ॥
 ओइ हरि के संत न आखीअदि घानारसि के ढग ॥
 ऐसे संत न मो कउ भावहि ।
 ढाला सिउ पेडा गटकावहि ॥१॥
 बासन मांजि चरावहि ऊपरि काठी धोइ जलावहि ।
 बसुधा खोदि करहि दुइ चूल्हे सारे माणस खावहि ॥२॥
 ओइ पापी सदा फिरहि अपराधी मुखहु अपरस कहावहि ।
 सदा सदा फिरहि अभिमानी सगल कुटंब दुवावहि ॥३॥
 जिसु को लाइआ तित ही लागा तैसे करम कमावै ।
 कहु कबीर जिसु सतिगुरु भेटै पुनरपि जनमि न आवै ॥४॥

३

बापि दिलासा मेरो कीन्हा ।
 सेज सुखाली मुखि अंघ्रितु दीन्हा ॥
 तिसु बाप कउ किउ मनहु विसारी ।
 आगै गइथा न बाजी हारी ॥
 सुई मेरी माई हउ खरा सुखाला ।
 पहिरउ नही दगली लगै न पाला ॥१॥
 बलि तिसु बापै जिनि हउ जाइथा ।
 पंचा ते मेरा संगु चुकाइथा ॥
 पंच मारि पावा तलि दीने ।
 हरि सिमरनि मेरा मनु तनु भीने ॥२॥
 पिता हमारो बड गोसाईं ।
 तिसु पिता पहि हउ किउकरि जाई ॥
 कतिगुर मिले त मारगु दिखाइथा ।
 जगत पिता मेरे मनि भाइथा ॥३॥
 छउ पतु तेरा तू बापु मेरा ।
 पढ़े ठाठर दुहा वसेरा ॥
 कह कबीर जनि एको नूम्किथा ।
 गुन प्रमादि मै सभु किछु सूम्किथा ॥४॥

४

इउनु पतनि भनि डगट कुगट इउनु पतरि भरि पानी ।
 आमि पामि पंच गोमीथा बेटे धीचि नकटदे रानी ॥
 नदरी गी दगगनु बाबा रूं । किनहि बिपेकी काटी तूं ॥१॥
 मगल मादि नदरी का पाया मगल मागि अउठेरी ।
 मगलिया धी हउ बदिन भानजी निगदि धी निमु चेरी ॥२॥

हमरो भरता बढो विवेकी आपे संतु कहावै ।
 ओहु हमारै माथै काइसु अउरु हमारै निकटि न आवै ॥३॥
 नाकहु काटी कानहु काटी काटि कूटि कै डारी ।
 कहु कवीर संतन की वैरनि तीनि लोक की पिश्वारी ॥४॥

५

जंगी जती तपी संनिआसी बहु तीरथ भ्रमंना ।
 लुंजित सुंजित मोनि जटाधर अंति तऊ मरना ॥
 ता ते सेवीअले रामना ।
 रसना राम नाम हितु जा कै कहा करै जमना ॥१॥
 आगम निरगम जोतिक जानहि बहु बहु विआकरना ।
 तंत्र मंत्र सभ अउखध जानहि अंति तऊ मरना ॥२॥
 राज भोग अरु छत्र सिधासन बहु सुंदरि रमना ।
 पान कपूर सुवासक चंदन अंति तऊ मरना ॥३॥
 वेद पुरान सिन्नित सभ खोजे कहू न उवरना ।
 कहु कवीर इउ रामहि जंपउ मेटि जनम मरना ॥४॥

६

फोलु रवाची । बलहु पखावज कऊआ ताल बजावै ।
 पहिरि चोलना गदहा नाचै भैसा भगति करावै ॥
 राजा राम ककरोआ वरेपकाए । किनै ब्रूमन हारै खाए ॥१॥
 बैठि सिंधु घरि पान लगावै घीस गलउरे लिआवै ।
 घरि घरि सुसरी मंगलु गावहि कछूआ संखु बजावै ॥२॥
 बंस को पूतु बीआहन चलिआ सुइने मंडप छाए ।
 रूप कंनिआ सुंदरि बेधी ससै सिंधु गुन गाए ॥३॥
 कहत कवीर सुनहु रे संतहु कीटी परवतु खाइआ ।
 कछूआ कहै अंगार भि लोरउ लूकी सयतु सुनाइआ ॥४॥

७

बट्ठा एक बहतरि आधारी एको जिसहि दुआरा ।
 नवै खंड की प्रियमी मागै सो जोगी जगि सारा ॥
 ऐसा जोगी नउ निधि पावै । तलका ब्रह्म ले गगनि चरावै ॥१॥
 बिथा मिथान धिथान करि सूई सबहु तागा मथि घालै ।
 पंच तनु की करि मिराणी गुर कै मारगि चालै ॥२॥
 बट्ठा फाहरी काट्ठा करि ब्रह्म द्रिसटि की अगनि जलावै ।
 निस का भाउ लग रिद अंतरि चहु जुग ताढ़ी लावै ॥३॥
 मभ जोगतण राम नामु है जिसका पिछु पराना ।
 कहु कबीर जे किरपा धारै देह सचा नीसाना ॥४॥

८

हिंदू गुरुक कहा ते आपु किनि एह राह चलाई ।
 दिख मरिहोचि बिचार कयाहे भिसत दोजक किनि पाई ॥
 कानी तै कवन कनेम बगानी ।
 पढ़त गुनन ऐसे सभ मारै किनहुँ खबरि न जानी ॥१॥
 मरनि मनेहु करि मुननि करीअं मै न बढुआ भाई ।
 गड ने गुदाइ मोहि गुरुक करैगा आपन ही कटि जाई ॥२॥
 मुननि नीए गुरुक जे होइगा अउरत का किआ अरीअै ।
 अरब शरीरी नाहि न छोड़े नावे हिंदू हो रहैअै ॥३॥
 दाहि खेय राम भनु बटरे गुनम करत है भारी ।
 बखीर बखीर देह राम की गुरुक गं पचि हारी ॥४॥

९

दाहि नरि मरिहोचि पानी जीउ ।
 दिख पाहरे अउ पानी नरि मो पादन निरजीउ ॥
 बखीर मरिहो है एह । मरिहो जामना है देह ॥१॥

ब्रह्म पाती बिसनु डारी फूल संकर देउ ।
 तीनि देव प्रतखि तोरहि करहि किस की सेउ ॥२॥
 पाखान गढि कै मूरति कीन्ही दे कै छाती पाउ ।
 जे एह मूरति साची है तउ गढ़णहारे खाउ ॥३॥
 भातु पहिति अरु लापसी करकरा कासार ।
 भोगनहारे भोगिया इसु मूरति के मुख छार ॥४॥
 मालिनि भूली जगु भुलाना हम भुलाने नाहि ।
 कहु कबीर हम राम राखे क्रिपा करि हरि राइ ॥५॥

१०

बारह बरस बालपन बीते बीस बरस कछु तपु न कीओ ।
 तीस बरस कछु देव न पूजा फिरि पट्टताना बिरधि भइओ ॥
 मेरी मेरी करते जनमु गइओ ।
 साइर सोखि भुजं बलइओ ॥१॥
 सूके सरवरि पालि बंधावै लूणे खेति हथ वारि करै ।
 आइओ चोरु तुरंतह ले गइओ मेरी राखत मुगधु फिरै ॥२॥
 चरन सीसु कर कंपन लागे नैनी नीरु असार बहै ।
 जिहवा बचनु सुधु नही निकसै तब रे धरम की आस करै ॥३॥
 हरि जीउ क्रिपा करै लिब नावै लाहा हरि हरि नामु लीओ
 गुर परसादी हरि धनु पाइओ अंते चल दिआ नालि चलिओ ॥४॥
 कहत कबीर सुनहु रे संतहु अनु धनु कछूथै लै न गइओ ।
 आई तलब गोपालराइ को माइआ मंदर छोडि चलिओ ॥५॥

११

काहु दीन्हे पाट पटंबर काहु पलघ निवारा ।
 काहु गरी गोदरी नाही काहु खान परारा ॥
 अहिरख चाटु न कीजै रे मन ।
 सुकिनु करि करि लीजै रे मन ॥१॥

संत कबीर

कुम्हारै एक जु माटी गूंधी बहु विधि बानी लाई ।
 काहू महि मोती मुकताहल काहू बिआधि लगाई ॥२॥
 सूमहि धनु राखन कउ दीआ सुगधु कहै धनु मेरा ।
 जम का डंडु मृंढ महि लागै खिन महि करै निवेरा ॥३॥
 हरि जनु उतसु भगतु सदावै आगिआ मनि सुखु पाई ।
 जो तिसु भावै सति करि मानै भाणा संनि वसाई ॥४॥
 कहै कबीर सुनहु रे संतहु मरी मेरी मूठी ।
 चिरगट फारि चटारा लै गइओ तरौ तागरी छूटी ॥५॥

१२

हम मसकीन खुदाई बंदे तुम राजसु मनि भावै ।
 अलह अवलि दीन को साहिबु जोरु नही फुरमावै ॥
 काजी बोलिआ बनि नही आवै ॥१॥
 रोजा धरै निवाज गुजारै कलमा भिसति न होई ।
 सतरि कावा घट ही भीतरि जे करि जानै कोई ॥२॥
 निवाज सोई जो निआउ बिचारै कलमा अकलहि जानै ।
 पाचहु मुसि मुसला बिछावै तब तउ दीनु पछानै ॥३॥
 ग़समु पछानि तरस करि जीअ महि मारि मणी करि फीकी ।
 आपु जनाइ अवर कउ जानै तब होइ भिसत सरीकी ॥४॥
 माटी एक भेल धरि नाना ता महि ब्रह्म पछाना ॥
 कहै कबीरा भिसति छोडिकरि दोजक सिउ मनु माना ॥५॥

१३

गगन नगरि इद बूंद न बरखै नातु कहा जु समाना ।
 पारब्रह्म परमेसुर माथो परम हंसु ले सिधाना ॥
 चाचा बोलते ते कहा गए । देही के संगि रहते ।
 सुरति माहि जो निरते करते कथा चारता कहने ॥१॥

बजावन हारो कहा गइओ जिनि इहु मंदरु कीना ।
 साखी सबदु सुरति नही उपजै खिचि तेजु सभु लीना ॥२॥
 खवनन विकल भए संग तेरे इंद्री का बलु थाका ।
 चरन रहे कर ढरकि परे है सुखहु न निकसै बाता ॥३॥
 थाके पंच दूत सभ तसकर आप आपणै भ्रमते ।
 थाका मनु कुंचर उरु थाका तेजु सूतु धरि रमते ॥४॥
 मिरतक भए दसै बंक छुटै मित्र भाई सभ छोरे ।
 कहत कबीरा जां हरि धिआवै जीवत बंधन तोरे ॥५॥

१४

सरपनी ते ऊपरि नही बलीआ ।
 जिनि ब्रह्मा बिसनु महादेउ छलीआ ॥
 मारु मारु सपनी निरमल जलि पैठी ।
 जिनि त्रिभवणु डसीअले गुर प्रसादि डीठी ॥१॥
 सपनी सपनी किया कहउ भाई ।
 जिनि साचु पछानिआ तिनि सपनी खाई ॥२॥
 सपनी ते आन छूछ नही अवरा ।
 सपनी जीती कहा करै जमरा ॥३॥
 इह सपनी तां की कीती होई ।
 बलु अबलु किया इस ते होई ॥४॥
 इह बसती ता बसत सरीरा ।
 गुर प्रसादि सहजि तरे कबीरा ॥५॥

१५

कहा सुआन कउ सिन्निति सुनाए ।
 कहा साकत परि हरि गुन गाए ॥
 राम ॥ राम राम रमे रमि रहीअै ।
 साकत सिंग भूलि नही कहीअै ॥१॥

संत कवीर

कऊआ कहा कपूर चराए ।
 कह बिसीअर कड दूधु पीआए ॥२॥
 सति संगति मिलि बिबेक बुधि होई ।
 पारसु परसि लोहा कंचनु सोई ॥३॥
 साकतु सुथानु सभु करे कहाइआ ।
 जो धुरि लिखिआ सो करम कमाइआ ॥४॥
 अंजितु लै लै नीमु सिचाई ।
 कहत कवीर उआ को सहजु न जाई ॥

१६

लंका सा कोटु संमुद सी खाई ।
 तिह रावन घर खवरि न पाई ॥
 किआ मागउ किहु थिरु न रहाई ।
 देखत नैन चलिअो जग जाई ॥१॥
 इकु लखु पूत सवा लघु नाती ।
 तिह रावन घर दीआ न वाती ॥२॥
 चंडु सूरजु जा के तपत रसोई ।
 वैसंतरु जा के कपरे धोई ॥३॥
 गुरमति रामै नामि बसाई ।
 असधिरु रहै न कतहुँ जाई ॥४॥
 कहत कवीर सुनहु रे लोई ।
 राम नाम गिनु मुकति न होई ॥५॥

१७

पहिला पतु पिछे री माई ।
 गुरु लागो चेले की पाई ॥
 पंहु अचंभउ सुनहु तुम भाई ।
 देखत सिंधु चराघत गाई ॥१॥

जल की मल्लूली तरवरि बिआई ।
 देखत कुतरा लै गई बिलाई ॥२॥
 तलै रे वैसा ऊपरि सूला ।
 तिस कै पेडि लगे फल फूला ॥३॥
 घोरे चरि भैस चरावन जाई ।
 बाहरि बैलु गानि घरि आई ॥४॥
 कहत कबीर जु इस पद बूझै ।
 राम रमत तिसु सभु किहु सूझै ॥५॥

१७

बिदु ते जिनि पिंडु कीआ अगनि कुंठ रहाइआ ।
 दस मास माता उदरि राखिआ बहुरि लागी माइआ ॥
 प्रानी कहे मउ लोभि लागे रतन जनमु खोइआ ।
 पूरव जनमि करम भूमि बीजु नाही बोइआ ॥१॥
 बारकि ते बिरधि भइआ होना सो होइआ ।
 जा जमु आइ मोट पकरै तवहि काहे रोइआ ॥२॥
 जीवनै की आस करहि जमु निहारै सासा ।
 बाजीगरी संसार कबीरा चेति ढालि पासा ॥३॥

१८

तनु रेनी मनु पुनरपि करिहउ पाचउ तत बराती ।
 राम राइ सिउ भावरि लैहउ आतम तिह रंग राती ॥
 गाउ गाऊ री दुलहनी मंगल चारा ।
 मेरे ग्रिह आए राजा राम भतारा ॥१॥
 नाभि कमल महि वेदी रचिले ब्रह्म गिआन उचारा ।
 राम राइ सो दूलहु पाइओ अस् बढ भाग हमारा ॥२॥
 सुरि नर मुनि जन कउतक आए कोटि तेतीसउ जानां ।
 कहि कबीर मोहि बिआहि चले है पुरख एक भगवाना ॥३॥

रागु सोरठि

१

चुत पूजि पूजि हिंदू मूए तुरक मूए सिरु नाई ।

ओइ ले जारे ओइले गाढे तेरी गति दूहू न पाई ॥

मन रे संसारु अंध गहेरा ।

चहु दिस पसरिओ है जम जेवरा ॥१॥

कवित पड़े पड़ि कविता मूए कपड़ केदारै जाई ।

जटा धारि धारि जोगी मूए तेरी गति इनहि न पाई ॥२॥

दरबु संचि संचि राजे मूए गडि ले कंचन भारी ।

वेद पड़े पड़ि पंडित मूए रूप देखि देखि नारी ॥३॥

राम नाम विनु सभे विगूले देखहु निरखि सरीरा ।

हरि के नाम विनु किनि गति पाई कहि उपदेसु कबीरा ॥४॥

२

जब जरीअै तब होइ भसम तनु रहै किरम दल खाई ।

काची गागरि नीरु परतु है इथा तन की इहै बडाई ।

काहे भाईअै फिरतौ फूलिअै फूलिअै ।

जब दस मास उरध मुख रहता सो दिनु कैसे भूलिअै ॥१॥

जिउ मथु माखी तिउ सठोरिरसु जोरि जोरि धनु कीअै ।

मरती बार लेहु लेहु करीअै भृतु रहन किउ दीअै ॥२॥

देहुरी लउ बरी नारि संग भई आगै सजन सुहेला ।

मरघट लउ मथु लोंगु कुटंभु भद्यों आगै हंसु अकेला ॥३॥

कहनु कबीर सुनहु रे प्रानी परे काल अस कृआ ।

मृती माइया अपु दंथाइअै जिउ नलनी भ्रमि सुआ ॥४॥

३

वेद पुरान सभै मत सुनि कै करी करम की आसा ।
 काल असत सभ लोग सिआने उठि पंडत पै चले निरासा ॥
 मन रे सरिओ न एकै काजा ।
 भजिओ न रघुपति राजा ॥१॥
 वनखंड जाइ जोगु तपु कीनो कंद मूलु चुनि खाइया ।
 नादी बेदी सबदी मोनी जम के पटे लिखाइया ॥२॥
 भगति नारदी रिदै न आई काचि फूछि तनु दीना ।
 राग रागिनी डिंभ होइ बैठा उनि हरि पहि किआ लीना ॥३॥
 परिओ कालु सभै जग ऊपर माहि लिखे भ्रम गिआनी ।
 कहु कबीर जन भए खालासे प्रेम भगति जिह जानी ॥४॥

जागतु सोइआ जनमु गवाइआ ।
 मालु धनु जोरिआ भइआ पराइआ ॥
 कहु कबीर तेई नर भूले ।
 खसमु यिसारि माटी संगि रूले ॥४॥

३

थाके तैन सवन सुनि थाके थाकी सुंदरि काइआ ।
 जरा हाक दी सभ मति थाकी एक न थाकसि माइआ ॥
 वावरे तै गिआन बीचारु न पाइआ ।
 बिरथा जनमु गवाइआ ॥१॥
 तब लगु प्रानी तिसै सरेवहु जब लगु घट महि सासा ।
 ले घटु जाइ त भाउ न जासी हरि के चरन निवासा ॥२॥
 जिस कउ सबहु बसावै अंतरि चूकै तिसहि पिआसा ।
 हुकमै वूमै चउपडि खेलै मनु जिणि ढाले पासा ॥३॥
 जो जन जानि भजहि अधिगत कउ तिन का कछु न नासा ।
 कहु कबीर ते जन कयहु न हारहि ढालि जु जानहि पासा ॥४॥

४

एकु कोटु पंच सिकदारा पंचे मागहि हाला ।
 जिमी नाही मै किसी की बोइ अैसा देनु दुखाला ॥
 हरि के लोगा मो कउ नीति डसै पटवारी ।
 ऊपरि भुजा करि मै गुर पहि पुकारिआ तिनि हउ लीआ उवारी ॥१॥
 नउ ढाढी दस मुंसफ धावहि रइअति बसन न देही ।
 डोरी पूरी मापहि नाही बहु विसटाला लेही ॥२॥
 बहतरीघरि इकु पुरखु समाइआ उनि दीआ नामु लिखाई ।
 धरमराय का दफतरु सोधिआ बाकी रिजम न काई ॥३॥
 संता कउ मति कोई निंदहु संत रामु है एको ।
 कहु कबीर मै सो गुरु पाइआ जा का नाउ बिदेको ॥४॥

मोहि वैरागु भइओ ।

इहु जीउ आइ कहा गइओ ॥१॥

पंज ततु मिलि काइआ कीनी ततु कहा ते कीनु रे ।

करम बध तुम जोउ कहत हौ करमहि किनि जीउ दीनु रे ॥२॥

हरि महि तनु है तन महि हरि है सरव निरंतरि सोइ रे ।

कहि कबीर राम रामु न छोडउ सहजे होइ खु होइ रे ॥३॥

४

भुजा बांधि मिला करि डारिओ ।

हसती क्रोपि मूँड महि मारिओ ॥

हसति भागि कै चीसा मारै ।

इआ मूरति कै हउ बलिहारै ॥

आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोरु ।

काजी बकिवो हसती तोरु ॥१॥

रे महावत तुझु डारउ काटि ।

इसहि तुरावहु घालहु साटि ॥

हसति न तोरै धरै धिआनु ।

वाकै रिदं बसै भगवानु ॥२॥

किआ अपराधु संत है कीन्हा ।

बांधि पोटि कुंज कउ दीना ॥

कुंजरु पोट लै लै नममकारै ।

बूझी नहीं काजी अंधिआरै ॥३॥

तीनि बार पतीआ भरि लीना ।

मन कठोरु अजहू न पतीना ॥

कहि कबीर हमरा गांधिनु ।

चउथे पद महि जन की जिंदु ॥४॥

५

ना इहु मानसु ना इहु देहु ।
 ना इहु जती कहावै सेउ ॥
 ना इहु जोगी ना श्रवधूता ।
 ना इसु माइ न काहू पृता ॥
 इथा मंदर माहि कौन बसाइ ।
 ता का श्रंतु न कोऊ पाई ॥१॥
 ना इहु गिरही ना ओदासी ।
 ना इहु राज न भीख संगसी ॥
 ना इहु पिहु न रकनू राती ।
 ना इहु ब्रह्मनु न इहु खाती ॥२॥
 ना इहु तपा कहावै सेखु ।
 ना इहु जीयै न मरता देखु ॥
 इसु मरते कउ जे कोऊ रोवै ।
 जो रोवै सोइ पति खोवै ॥३॥
 गुर प्रसादि मै बगरो पाइथा ।
 जीवन मरनु दोऊ मिटवाइथा ॥
 कहु कबीर इहु राम की श्रंसु ।
 जस कागद पर मिटै न संसु ॥४॥

६

तूटे तागे निखुटी पानि ।
 दुश्चार ऊपरि क्लिकावहि कान ॥
 कृच विचारे कृप फाल ।
 इथा मुंढीथा मिर चढियो काल ॥
 इहु मुंढीथा सगलो द्रवु खाई ।
 आवत जात नाक सर होई ॥१॥

तुरी नारि की छोड़ी बाता ।
 राम नाम वा का मनु राता ॥
 लरकी लरिकन खैवो नाहि ।
 मुंड़ीआ अनदिनु धापे जाहि ॥२॥
 इक दुइ मंदिर इक दुइ बाट ।
 हम कउ साथरु उन्ह कउ खाट ॥
 मूंड पलोसि कमर बधि पोथी ।
 हम कउ चाबनु उन कउ रोटी ॥३॥
 मुंड़ीआ मूंडीया हूए एक ।
 इह मुंड़ीआ वूडत की टेक ।
 सुनि अंधली लोई वे पीर ।
 इन्हि मुंड़ीअन भजि सरनि कबीर ॥४॥

रागु रामकली

१

काइआ कलालनि लाहनि मेलउ गुर का सबतु गुडु कीनु रे ।
 त्रिसना कामु क्रोधु मद मतसर काटि काटि कसु दीनु रे ॥
 कोई है रे संतु सहज सुख अंतरि जाकउ जपु तपु देउ दलाली रे ।
 एक वूंद भरि तनु मनु देवउ जो मदु देइ कलाली रे ॥१॥
 भवन चतुरदस भाठी कीन्ही ब्रह्म अगनि तनि जारी रे ।
 मुद्रा मदक सहज धुनि लागी सुखमन पोचनहारी रे ॥२॥
 तीरथ वरत नेम सुचि संजम रबि सखि गहनै देउ रे ।
 सुरति पिआल सुधा रसु अंनितु एहु महा रसु पेउ रे ॥३॥
 निरुधर धार चुअै अति निरमल इह रस मनूआ रातो रे ।
 कहि कवीर सगले मद छूछे इहै महा रसु साचो रे ॥४॥

२

गुडु करि गिआनु धिआनु करि सहूआ
 भउ भाठी मन धारा ।
 सुखमन नारी सहज समानी पीवै पीवनहारा ॥
 अउधु मेरा मनु मतवारा ।
 उन्नमद चढा मदन रसु चाखिआ त्रिभवन भइआ उजिआरा ॥१॥
 दुइ पुर जोरि रसाई भाठी पीउ महा रसु भारी ।
 कामु क्रोधु दुइ कीए जलेता छूटि गई संसारी ॥२॥
 प्रगत प्रगास गिआन गुर गंमित सतिगुर से सुधि पाई ।
 दासु कवीर तासु मद माता उचकि न कबहू जाई ॥३॥

३

तूं मेरो मेरु परबतु सुआमी ओट गही मै तेरी ।
 ना तुम डोलहु ना हम गिरते रखि लीनी हरि मेरी ॥

अब तब जब कब तुही तुही ।
 हम तुअ परसाद सुखी सदही ॥
 तोरे भरोसे मगहर बसिओ मेरे तन की तपति बुझाई ।
 पहिले दरसन मगहर पाइओ फुनि कासी बसे आई ॥२॥
 जैसा मगहर तैसी कासी हम एकै करि जानी ।
 हम निरधन जिउ इहु धनु पाइआ मरते फूटि गुमानी ॥३॥
 करै गुमान चुभहि तिसु सूला को काढन कउ नाही ।
 अजै सुचोभ कउ बिलल बिलाते नरके घोर पचाही ॥४॥
 कवनु नरकु किआ सुरगु विचारा संतन दोऊ राइ ।
 हम काहू की काणि न कढते अपने गुर परसादे ॥५॥
 अब तउ जाइ चढे सिंघासन मिले है सारिंगपानी ।
 राम कबीरा एक भए है कोइ न सकै पछानी ॥६॥

४

संता मानउ दूता डानउ इहु कुटवारी मेरी ।
 दिवस रैन तेरे पाउ पलोसउ केस चवर करि फेरि ॥
 हम फूकर तेरे दरवारि ।
 भउकहि आनै बदनु पसारि ॥१॥
 पूरय जनम हम तुम्हरे सेवक अब तउ मिटिआ न जाई ।
 तेरे दुआरै धुनि सहज की साथै मेरे दगाई ॥२॥
 दागे होहि सु रन महि जूझहि बिनु दागे भगि जाई ।
 साधु होइ सु भगति पछानै हरि लए खजानै पाई ॥३॥
 कोठरे महि कोठरी परम कोठी बीचारि ।
 गुर दीनी बसतु कबीर कउ लेवउ बसतु समारि ॥४॥
 कबीर दीइ संसार कउ लोनी जिसु मसतकि भागु ।
 अंघ्रित रसु जिनि पाइआ थिर ता का सोहागु ॥५॥

५

जिह मुख वेदु गाढ़ी निकसै सो किउ ब्रह्मनु बिसर करै ।

जा कै पाइ जगतु सभु लागै सो किउ पंठितु हरि न कहै ॥

काहे मेरे बाग्हन हरि न कहहि ।

रामु न बोलहि पाडे दोजकु भरहि ॥१॥

आपनु ऊच नीच घरि भोजनु हटे करम करि उदर भरहि ।

घउदस अमावस रचि रचि सांगहि कर दीपकु लै दृष परहि ॥२॥

तूं ब्रह्मनु मै कासी कजुलहा मुहि तोहि बराबरी कैसे कै बनहि ।

हमरे राम नाम कहि उवरे वेदु भरोसे पांढे द्वधि मरहि ॥३॥

६

तरवर एकु अर्नंत डार साखा पुहप पत्र रस भरीआ ।

इह अंम्रित की बाढ़ी है रे तिनि हरि पूरे करीआ ॥

जानी जानी रे राजा राम की कहानी ।

अंतरि जोति राम परगासा गुरमुखि बिरलै जानी ॥१॥

भवर एकु पुहप रस बीधा बारह ले उरधरिआ ।

सोरह मधे पवन झकोरिआ आकासे फरु फरिआ ॥२॥

सहज सुनि इकु बिरवा उपजिआ धरती जलहरु सोखिआ ।

कहि कबीर हउ ता का सेवकु जिनि इहु बिरवा देखिआ ॥३॥

७

मुंदा मोनि दइआ करि झोली पत्र का करहु बीचारु रे ।

खिंथा इहु तनु सीअउ अपना नामु करउ आधारु रे ॥

ऐसा जोगु कमावहु जोगी ।

जप जप संजमु गुरमुखि भोगी ॥१॥

दुधि विभूति चढावउ अपुनी सिंगी सुरति मिलाई ।

करि वैरागु फिरउ तनि नगरी मन की किंगुरी बजाई ॥२॥

पंच ततु लै हिरदै राखहु रहै निरालम ताड़ी ।
कहतु कबीरु सुनहु रे संतहु धरमु दइआ करि बाड़ी ॥३॥

८

कवन काज सिरजे जग भीतरि जनमि कवन फलु पाइआ ।
भव निधि तरन तारन चिंतामनि इक निमख न इहु मनु लाइआ ॥
गोविंद हम ग्रैसे अपराधी ।
जिनि प्रभि जीउ पिंडु था दीआ तिस की भाउ भगति नही साधी ॥१॥
परधन परतन परती निंदा पर अपबाहु न छूटै ।
आवा गवनु होत है फुनि फुनि इहु परसंगु तूटै ॥२॥
जिह घर कथा होत हरि संतन इक निमख न कीनो मै फेरा ।
लंपट चोर दूत मतवारे तिन संगि सदा बसेरा ॥३॥
काम क्रोध साइआ मदं मतसर ए संपै मो माही ।
दइआ धरमु अरु गुर की सेवा ए सुपनंतरि नाही ॥४॥
दीन दइआल क्रिपाल दमोदर भगति बछल भै हारी ।
कहत कबीर भीर जन राखहु हरि सेवा करउ तुम्हारी ॥५॥

रागु केदारा

१

उसतति निंदा दोऊ विवरजित तजहु मानु अभिमाना ।
लोहा कंचनु सम करि जानहि ते मूरति भगवाना ॥

तेरा जनु एकु आधु कोरे ।

कामु कोधु लोभु मोहु विवरजित हरि पट्टु चीन्है सोरे ॥१॥

रज गुण तम गुण सत गुण कहीअैं एह तेरी सभ माइआ ।

चउथे पद कउ जो नरु चीन्है तिन ही परम पट्टु पाइआ ॥२॥

तीरथ वरत नेम सुचि संजम सदा रहै निहकामा ।

त्रिसना अरु माइआ अमु चूका चितवत आतम रामा ॥३॥

जिह मंदरि दीपकु परगासिआ अंधकारु तह नासा ।

निरभउ पूरि रहे अमु भागा कहि कवीर जन दासा ॥४॥

२

किनही वनजिआ कांसी तांवा किन ही लउग सुपारी ।

संतहु वनजिआ नामु गोविंद का औसी खेप हमारी ॥

हरि के नाम के बिआपारी ।

हीरा हाथि चड़िआ निरमोलकु छुटि गई संसारी ॥१॥

साचे लाए तउ सच लागे साचे के विउहारी ।

साची वस्तु के भार चलाए पहुचे जाइ भंडारी ॥२॥

आपहि रतन जवाहर मानिक आपै है पासारी ।

आपै दहदिस आप चलावै निहचलु है बिआपारी ॥३॥

मनु फरि वैलु सुरति करि पैढा गिआन गोनि भरि डारी ।

कहतु कवीरु सुनहु रे संतहु निवही खेप हमारी ॥४॥

३

री कलवारि गवारि मूढ़ मति उलटो पवनु फिरावउ ।

मनु मतवार मेर सर भाठी अंघ्रित धार लुआवउ ॥

बोलहु भईआ राम की दुहाई ।

पीवहु संत सदा मति दुरलभ सहजे पिआस बुझाई ॥१॥

भै विचि भाउ भाइ कोउ बूझहि हरि रसु पावै भाई ।

जेते घट अंघ्रितु सभ ही सहि भावै तिसहि पीआ ॥२॥

नागरी एकै नउ दरवाजे धावतु वरजि रहाई ।

त्रिकुटी छूटै दसवा दरु खूहै ता मनु खीवा भाई ॥३॥

अभै पद पूरि ताप तिह नास कह कबीर वीचारी ।

उचट चलते इहु महु पाइआ जैसे खोंद खुमारी ॥४॥

४

काम क्रोध त्रिसना के लीने गति नही एकै जानी ।

कूटी आखै कछु न सूझै बूडि मूए बिनु पानी ॥

चलत कत टेढे टेढे टेढे

असति चरम विसटा के मूंदे दुरगंध ही के देढे ॥१॥

राम न जपहु कवन भ्रम भूले तुम ते कालु न दूरे ।

अनिक जतन करि इह तनु राखहु रहै अवसथा पूरे ॥२॥

आपन कीआ कछु न होवै किआ को करै परानी ।

ता तिसु भावै सतिगुरु भेटै एको नामु बखानी ॥३॥

बलूआ के घरुआ सहि बसते फुलवत देह अइआने ।

कहु कबीर जिह रामु न चेतियो बूढे कहतु सिआने ॥४॥

५

टेढी पाग टेढे चले लागे वीरे खान ।

भाउ भगति सिउ काज न अछूथै मेरो कामु दीवान ॥

रामु विमारियो दी जभिमान ।

कनिक कामनी मठा सुंदरी पैगि पैगि मनु मानि ॥१॥

लालच कूठ बिहार मदासद इह बिज अउय बिजनि ।

कहि कबीर श्रंत की खेर जाद गामी जाद निजनि ॥२॥

६

चारि दिन थपनी नउचति चले बजाइ ।

इतनु सटीया मटीया मटीया मंगि न कहु ती जाइ ॥

देहरी बैठी मिहरी रोवै दुआरै लउ संग जाइ ।

मरहट लागि सभु लोगु कुटुंबु मिलि मंसु इकेजा जाइ ॥१॥

वै सुत वै चित वै पुर पाउन बहुनि न देखै जाइ ।

कहतु कबीर राम की न सिसरहु जनसु अकारथ जाइ ॥२॥

रागु भैरउ

१

। ते भगति कमाई ।
। मानस देही पाई ॥
। कउ सिमरहि देव ।
भजु हरि की सेव ॥
। विधि भूलि मत जाहु ।
जनम का एही लाहु ॥१॥
जरा रोगु नही आइआ ।
कालि ग्रसी नही काइआ ॥
। विकल भई नही बानी ।
। हिरे मन सारिगपानी ॥२॥
मजसि भजसि कव भाई ।
। तु न भजिआ जाई ॥
हु करहि सोई अरु सारु ।
छुताहु न पावहु पारु ॥३॥
। वकु जो लाइआ सेव ।
। पाए निरंजन देव ॥
। लि ताकै खुल्ले कपाट ।
न आवै जोनी बाट ॥४॥
। अउसरु इह तेरी वार ।
। नीतरि तू देखु बिचारि ॥
। कवीरु जीति कै हारि ।
। धि कहियो पुकारि पुकारि ॥५॥

२

सिच की पुरी बसै बुधि सारु ।
 तह तुम्ह मिलि कै करहु विचारु ॥
 ईत ऊत की सोनी परै ।
 कउन करम मेरा करि करि मरै ॥
 निजपद ऊपरि लागो धियानु ।
 राजा राम नमु सोरा ब्रहम गिआनु ॥१॥
 मूल दुआरै बंशिया बंधु ।
 रवि ऊपर गहि राखिया चंदु ॥
 पछम दुआरै सूरजु तवे ।
 मेर डंड सिर ऊपरि बसै ॥२॥
 पसचम दुआरै की खिल थोड़ ।
 तिह सिल ऊपरि खिड़की अउर ॥
 खिड़की ऊपरि दसवा दुआरु ।
 कहि कबीर ता का अंतु न पारु ॥३॥

३

सो मुलां जो मुन सिड लरै ।
 गुर उपदेसि काल सिड जुरै ॥
 काल पुरख का मरदै मानु ।
 तिसु मुला कउ सदा सलामु ॥
 है हगूरि कत दूरि बतवहु ।
 दुंदर बाधहु सुंदर पावहु ॥१॥
 काजी सो जु काइया बीचारै ।
 काइया की अगनि ब्रहमु परजारै ॥
 गुपनै बिटु न देई मरना ।
 तिसु काजी कउ जरा न मरना ॥२॥

संत कबीर

सो सुरतानु जु दुइ सर तानै ।
 बाहरि जाता भीतरि आनै ॥
 गगन मंडल महि लसकरु करै ।
 सो सुरतानु छत्रु सिरि धरै ॥३॥
 जोगी गोरखु गोरखु करै ।
 हिंदू राम नाम उचरै ॥
 मुसलमान का एकु खुदाइ ।
 कबीर का सुआमी रहिआ समाइ ॥४॥

४

जो पाथर कउ कहते देव ।
 ता की बिरथा होवै सेव ॥
 जो पाथर की पांछे पाइ ।
 तिस की घाल अजाई जाइ ॥
 ठाकुर हमरा सद बोलंता ।
 सरब जीआ कउ प्रभु दानु देता ॥१॥
 अंतरि देउ न जानै अंधु ।
 भ्रम का मोहिआ पावै फंधु ॥
 ना पाथरु बोलै ना किंहु देइ ।
 फोकट करम निहफल है सेव ॥२॥
 जे मिरतक कउ चंदनु चढ़ावै ।
 उसते बहहु कवन फल पावै ॥
 जे मिरतक कउ बिसंटा माहिरु लाई ।
 तां मिरतक का किआ घटि जाई ॥३॥
 कहत कबीर हउ कहउ पुकारि ।
 समझि देखु साकत गावार ॥

दूजै भाइ बहुत घर घाले ।
राम भगत है सदा सुखाले ॥४॥

५

जल महि मीन माइया के बेघे ।
दीपक पतंग माइया के छेदे ॥
काम माइया कुंचर कड बिआपै ।
भुइयंगम भ्रिग माइया महि खापे ॥
माइया औसी मोहनी भाई ।
जेते जीअ तेते बहकाई ॥१॥
पंखी भ्रिग माइया महि राते ।
साकर माखी अधिक संतापे ।
तुरे उसट माइया महि भेला ।
सिध चउरासीह माइया महि खेला ॥२॥
छिअ जती माइया के बंदा ।
नवै नाथ सूरज अरु चंदा ॥
तपे रखीसर माइया महि सूता ।
माइया महि कालु अरु पंच दूता ॥३॥
सुआन सिआल माइया महि राता ।
दंतर चीते अरु तिंवाता ॥
माजार . गाडर अरु लूवरा ।
घिरख मूल माइया महि परा ॥४॥
माइया अंतरि भीने देव ।
सागर इंद्रा अरु धरतेव ॥
कहि कबीर जिनु उदरु तिसु माइया ।
तव छूटे जव साधू पाइया ॥५॥

६

जब लगु मेरी मेरी करै ।
 तब लगु काजु एकु नही सरै ॥
 जब मेरी मेरी मिटि जाइ ।
 तब प्रभ काजु सवारहि आइ ॥
 अैसा गियानु बिचारु मना ।
 हरि की न किमरहु दुख भंजना ॥१॥
 जब लग सिंधु रहै यन माहि ।
 तब लगु बनु फूलै ही नाहि ॥
 जब ही सिंधारु सिंध कउ खाइ ।
 फूलि रही सगळी धनराइ ॥२॥
 जीतो बूडै हारो तिरै ।
 गुर परसादी पारि उत्तरै ॥
 दासु कबीर कहै समझाइ ।
 केवल राम रहहु लिव लाइ ॥३॥

७

सतरि सैइ सलार है जा के ।
 सवा लाखु पैकाबर ता के ॥
 सेस जु कहीअहि कोटि अठासी ।
 छपन कोटि जाके खेल खासी ॥
 मो गरीब की को गुजरावै ।
 मजलसि दूरि महलु को पावै ॥१॥
 तेतीस करोड़ी है खेलखाना ।
 चउरासी लाख फिरै दिवानां ॥
 बाबा आदम कउ किन्हु नदरि दिखाई ।
 उन भी भिसति घनेरी पाई ॥२॥

दिल खलहलु जा कै जरदरुबानी ।
 छोडि कतेब करै सैतानी ॥
 दुनिया दोसु रोसु है लोई ।
 अपना कीया पावै सो ॥३॥
 तुम दाते हम सदा भिखारी ।
 देउ जवाबु होइ बजगारी ॥
 दासु कबीरु तेरी पनह समानां ।
 भिरतु नजीकि राखु रहमाना ॥४॥

८

सभु कोई चलन कहत है ऊहां ।
 ना जानउ वैकुंठु है कहां ॥
 आप आप का मरसु न जानां ।
 बातन ही वैकुंठु बखानां ॥१॥
 जब लगु मन वैकुंठ की आस ।
 तब लगु नाही चरन निवास ॥२॥
 खाई कोटु न परलपगारा ।
 ना जानउ वैकुंठ दुआरा ॥३॥
 कहि कबीर अब कहीअै काहि ।
 साध संगति वैकुंठे आहि ॥४॥

९

किउ लीजै गढु बंका भाई ।

दोवर कोट अरु तेवर खाई ॥

पौंच पचीस सोइ मइ मनसर आही परबल साइया ।
 जन गरीब को जोरु न पहुँचै कहां करउ रघुराइया ॥१॥
 कामु किवारी दुख मुखु दरबानी पापु पुंनु दरवाजा ।
 मोथु प्रधानु महा बट दुंदर तह मनु मावासी राजा ॥२॥

स्वाद सनाह टोपु ममता को कुबुधि कमान चढ़ाई ।
 तिसना तीर रहे घट भीतरि इउ गढु लीओ न जाई ॥३॥
 प्रेम पत्नीता सुरति हवाई गोला गिआनु चलाइया ।
 ब्रह्मि अगनि सहजे परजाली एकहि चोट सिम्माइया ॥४॥
 सतु संतोखु लै लरने लागा तोरे दुइ दरवाजा ।
 साध संगति अरुगुर की क्रिपा ते पकरिआं गढ को राजा ॥५॥
 भगवत भीरि सकति सिरमन की कटी काल भै फासी ।
 दासु कमीरु चढ़िओ गढ ऊपरि राजु लीओ अबनासी ॥६॥

१०

गंग गुसाइनि गहिर गंभीर ।
 जंजीर बाँधि करि खरे कबीर ॥
 मनु न ढिगै तनु काहे कउ डराइ ।
 चरन कमल चितु रहिओ समाइ ॥१॥
 गंगा की लहरि मेरी टुटी जंजीर ।
 अंगुलाला पर बैठे कबीर ॥२॥
 कहि कबीर कोऊ संग न साथ ।
 जल थल राखन है रघुनाथ ॥३॥

११

अगम द्रुगम गढ़ि रचिओ बास ।
 जा महि जोति करे परगास ॥
 बिजुली चमकै होइ अनंदु ।
 जिह पउड़े प्रभ बाल गोबिंद ॥
 इहु जीउ राम नाम लिव लागै ।
 जरा मरनु छूटै अमु भागै ॥१॥
 अवरन बरन सिउ मन ही प्रीति ।
 हउमै गावनि गावहि गीत ॥

अनहद खवद होत मुनकार ।
 जिह पडढे प्रभं स्त्री गोपाल ॥२॥
 खंडल मंडल मंडल मंडा ।
 त्रिय असथान तीनि तिअ खंडा ॥
 अगम अगोचर रहिआ अम अंत ।
 पारु न पावै को धरनीधर संत ॥३॥
 कदली पुहप धूप परगास ।
 रज पंकज महि लीओ निवास ॥
 दुआदस दल अम अंतरि संत ।
 जह पडढे स्त्री कमलाकंत ॥४॥
 अरध उरध मुखि लागो कासु ।
 सुंन मंडल महि करि परगासु ॥
 ऊहां सूरज नाही चंद ।
 आदि निरंजनु करै अनंद ॥५॥
 सो ब्रह्मंडि पिडि सो जानु ।
 मानसरोवरि करि हसनानु ॥
 सोहंसो जा कड है जाप ।
 जा कड लिपत न होइ पुंन अरु पाप ॥६॥
 अवरन चरन घाम नही छाम ।
 अवरन पाईओ गुर की साम ॥
 टारी न टैर आवै न जाइ ।
 सुंन सहज महि रहिओ समाइ ॥७॥
 मन मधे जानै जे कोइ ।
 जो चोले सो आपे छोइ ॥
 जाति मंत्रि मनि असथिन करै ।
 कहि कबीर सो प्रानी तरै ॥८॥

22

[illegible]

विदिशा कोटि मभै गुन कहै ।
 तऊ पारमहंस का अंतु न कहै ॥६॥
 बावन कोटि जाके रोमावली ।
 रावन सेना जह ते छली ॥
 गहम कोटि बहु कहन पुरान ।
 पुरजोषन का मथिना भानु ॥७॥
 बंदर कोटि जाके कवन भरहि ।
 खंवर खंवरि मनसा हरहि ॥
 यदि कबीर मुनि गारिगपान ।
 देहि जभै पद सांगत ध्यान ॥८॥

संत कबीर

बहु कबीर सुनहु नर नरवै परहु एक की सरना ।
केवल नामु जपहु रे प्राणी तब ही निहचै तरना ॥६॥

३

अवलि अलह नूर उपाइआ कुदरति के सभ बंदे ।
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे ॥

लोगा भरमि न भूलहु भाई ।

खालिकु खलक खलक महि खालकु पूरि रहिआ सब ठाई ॥१॥
माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै ।
न कहु पोच माटी के भांडे ना कहु पोच कुंभारै ॥२॥
सभ महि सचा एकौ सोई तिस का कीआ सभु कह्यु होई ।
हुकमु पढ़ानै सु एको जानै बंदा कहीअै सोई ॥३॥
अलहु अलखु न जाई लखिआ गुरि गुदु दीना मीठा ।
कहि कबीर मेरी संका नासी सरव निरंजनु डीठा ॥४॥

४

वेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न विचारै ।
जउ सभ महि एक खुदाइ कहत हउ तउ किउ मुरगी मारै ॥

मुला कसहु निआउ खुदाई ।

तेरे मन का भरसु न जाई ॥१॥

पकरि जीउ आनिआ देह विनासी माटी कउ बिसमिल कीआ ।
जोनि मरूप अनाहत लागी कहु हलालु किउ कीआ ॥२॥
किया उग्राकु कीआ मुहु धोइआ किया मसीति सिरलाइआ ।
जउ दिल महि कपटु निवाज गुजारहु किया हज कावै जाइआ ॥३॥
तू नापाकु पाकु नही मूझिआ तिसका मरसु न जानिआ ।
कहि कबीर भिमनि ते चूका दोजक सिउ मनु मानिआ ॥४॥

५

सुन संधिआ तेरी देव देवा कर अधपति आदि समाई ।
 सिध समाधि अंतु नही पाइआ लागि रहे सरनाई ॥
 लेहु आरती हो पुरख निरंजन सतिंगुर पृजहु भाई ।
 ठाढ़ा ब्रह्मा निगम बीचारै अलखु न लखिआ जाई ॥१॥
 ततु तेलु नामु कीआ बाती दीपकु दे उज्यारा ।
 जोति लाइ जगदीस जगाइआ बूमै बूमनहारा ॥२॥
 पंचे सबद अनाहद बाजे संगे सारिगपानी ।
 कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी ॥३॥



सलोक

कबीर मेरी सिमरनी रसना ऊपरि रासु ।
 आदि जुगादी सकल भगत ताको सुखु बिस्वामु ॥१॥
 कबीर मेरी जाति कउ सभु को हसनेहारु ।
 बलिहारी इस जाति कउ जिह जपिथो सिरजनहारु ॥२॥
 कबीर ढगमग किआ करहि कहा डुलावहि जीउ ।
 सरब सूख को नाहको राम नाम रसु पीउ ॥३॥
 कबीर कंचन के कुंडल बने ऊपरि लाल जड़ाउ ।
 दीसहि दाधे कान जिउ जिन मनि नाही नाउ ॥४॥
 कबीर अैसा एकु आधु जो जीवत त्रितकु होइ ।
 निरभै होई कै गुन रवै जत पेखउ तत सोइ ॥५॥
 कबीर जा दिन हउ मूआ पाछै भइया अनंदु ।
 मांहि मिलिथो प्रभु आपना संगी भजहि गोबिंदु ॥६॥
 कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ ।
 जिनि अैसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ ॥७॥
 कबीर आइं मुझहि पहि अनिक करे करि भेस ।
 हम राखे गुर आपने उनि कीनो आदेशु ॥८॥
 कबीर सोई मारीअै जिह मूअै सुखु होइ ।
 भलो भलो सभु को कहै बुरो न मानै कोइ ॥९॥
 कबीर राती होवहि कारीआ कारे ऊभे जंत ।
 लै फादे उठि धावते सि जानि मारे भगवंत ॥१०॥
 कबीर चंदन का बिरवा भला घेदियो ढाक पलास ।
 आइं भी चंदनु होइ रहे बसे जु चंदन पासि ॥११॥
 कबीर बांसु बड़ाई बूझिआ हउ मन दूबहु कोइ ।
 चंदन कै निकटं बर्य बांसु गुगन्धु न होइ ॥१२॥

कबीर दीनु गवाइआ दुनी सिउ दुनी न चाली साथि ।
 पाइ कुहाड़ा मारिआ गाफलि अपने हाथ ॥१३॥
 कबीर हज जह हउ फिरिओ कउतक ठाओ ठाड़ ।
 इक राम सनेही बाहरा, ऊजरु मेरै भांड ॥१४॥
 कबीर संतन की भुंगीआ भली भठि कुपती गाउ ।
 आगि लगउ तिह धउलहर जिह नाही हरि को नाउ ॥१५॥
 कबीर संत मूए किआ रोईअै जो अपुने ग्रिहि जाइ ।
 रोवहु साकतु बापुरे जु हाटे हाट बिकाइ ॥१६॥
 कबीर साकतु औसा है जैसी लसन की खानि ।
 कोने बैठे खाईअै परगट होइ निदान ॥१७॥
 कबीर माइआ डोलनी पवनु झकोलनहार ।
 संतहु माखनु खाइया छाछि पीअै संसार ॥१८॥
 कबीर माइआ डोलनी पवनु वहै हिवधार ।
 जिनि बिलोइआ तिनि थाइआ अवर बिलोवनहार ॥१९॥
 कबीर माइआ चोरटी मुसि मुसि लावै हाटि ।
 एक कबीरा ना मुसै जिनि कीनी बारह बाट ॥२०॥
 कबीर सुखु न एंह जुग करहि जु बहुतै मीत ।
 जो चितु राखहि एक सिउ ते सुखु पावहि नीत ॥२१॥
 कबीर जिसु मरनै ते जगु डरै मेरे मन आनंदु ।
 मरने ही ते पाईअै पूरनु परमानंदु ॥२२॥
 राम पदारथु पाइकै कबीरा गांठि न खोलह ।
 नही पटखु नही पारखू नही गाहकु नही मोखु ॥२३॥
 कबीर तासिउ प्रीति करि जाको ठाकुरु रामु ।
 पंडित राजे भूपती आवहि कउने काम ॥२४॥
 कबीर प्रीति इक सिउ कीए आन दुविधा जाइ ।
 भावै लांवे केस कर भावै घररि मुडाइ ॥२५॥

कबीर जगु काजल की कोठरी अंध परे तिस माहि ।
 हठ बलिहारी तिन्ह कउ पैसि जु नोकसि जाहि ॥२६॥
 कबीर इहु तनु जाइगा सकहु ते लेहु बहोरि ।
 नांगे पावहु ते गण जिन्ह के लाख करोरि ॥२७॥
 कबीर इहु तनु जाइगा कवनै मारगि लाइ ।
 कै संगति करि साध की कै हरि के गुन गाइ ॥२८॥
 कबीर मरता मरता जगु मूथा मरि भी न जानिआ कोइ ।
 थैसे मरने जो मरै बहुरि न मरना होइ ॥२९॥
 कबीर मानस जनमु दुलंभु है होइ न बारैवार ।
 जिउ वन फल पाके भुइ गिरहि बहुरि न लागहि डार ॥३०॥
 कबीरा तुही कबीर तू तोरो नाउ कबीरु ।
 राम रतनु तब पाइथै जउ पहिले तजहि सरीरु ॥३१॥
 कबीर झंखु न झंखीअँ तुमरो कहियो न होइ ।
 करम करीम जु करि रहे मेडि न साकै कोइ ॥३२॥
 कबीर कसउटी राम की झूठा टिकै न कोइ ।
 राम कसउटी सो सहै जो मरि जीवा होइ ॥३३॥
 कबीर ऊजल पहिरहि कापरे पान सुपारी खाहि ।
 एक स हरि के नाम विनु बावे जमपुर जाहि ॥३४॥
 कबीर देदा जरजरा फूटे छैंक हजार ।
 हरूप हरूप तिरि गण दूबे जिन मिर भार ॥३५॥
 कबीर हाउ जरे जिउ लाकरी केस जरे जिउ घासु ।
 इहु जग जरता देगि कै भइयो कबीर उदासु ॥३६॥
 कबीर गरबु न कीर्जाथै चाम लपेट हाउ ।
 दैवर ऊपर दूत्र तर ते कुनि धरनी गाउ ॥३७॥
 कबीर गरबु न कीर्जाथै ऊचा देगि अवासु ।
 आनु कानि भुट मेटाग ऊपरि जाम वासु ॥३८॥

कबीर गरबु न कीजीअ रंकु न हसीअ कोइ ।
 अजहु सु नाउ समुंद्र महि किआ जानउ किआ होइ ॥३६॥
 कबीर गरबु न कीजीअ देही देखि सुरंग ।
 आहु कालि तजि जाहुगे जिउ कांचुरी भुयंग ॥४०॥
 कबीर लूटना है त लूटि लै राम नाम है लूटि ।
 फिरि पाछै पछुताहुगे प्रान जाहिगे छूटि ॥४१॥
 कबीर असा कोई न जनमिअो अपने घर लावै आगि ।
 पांचउ लरिका जारि कै रहै राम लिव लागि ॥४२॥
 को है लरिका बेचै लरिकी बेचै कोइ ।
 सांझा करै कबीर सिउ हरि संगि बनजु करेइ ॥४३॥
 कबीर अवरह कउ उपदेसते मुख मै परिहै रेतु ।
 रासि चिरानी राखते खाया घर का खेतु ॥४४॥
 कबीर साधू की संगति रहउ जउ की भूखी खाउ ।
 होनहार सो होइहै साकत संगि न जाउ ॥४५॥
 कबीर संगति साध की दिन दिन दूना हेतु ।
 साकत कारी कांवरी धोए होइ ने सेतु ॥४६॥
 कबीर मनु मूंडिआ नही केस मुंढाए कांड ।
 जो किछु कीआ सु मन कीआ मूंडा मूंडु अजाइ ॥४७॥
 कबीर रामु न छोडीअ तनु धनु जाइ त जाउ ।
 चरन कमल चितु बेधिआ रामहि नामि समाउ ॥४८॥
 कबीर जो हम जंतु बजावते टूटि गई सभ तार ।
 जंतु विचारा किआ करै चले बजावन हार ॥४९॥
 कबीर माइ मूंडउ तिह गुरु की जा ते भरमु न जाइ ।
 आप हुवे चहु वेद महि चले दीए बहाइ ॥५०॥
 कबीर जेते पाप कीए राखे तलै दुराइ ।
 परगट भए निदान सभ जव पूछे धरमराइ ॥५१॥

कबीर हरि का सिमरनु छाडि कै पालिओ बहुतु कुटुंबु ।
 धंधा करता रहि गइया भारे रहिया न बंधु ॥५२॥
 कबीर हरि का सिमरनु छाडि कै राति जगावन जाइ ।
 सरपनि होइ कै अउतरै जाणु अपुने खाइ ॥५३॥
 कबीर हरि का सिमरनु छाडि कै अहोई राखै नारि ।
 गइया होइ कै अउतरै भारु सतै मन चारि ॥५४॥
 कबीर चनुगइ पानि घनी हरि जाप हिरदै माहि ।
 मूरी उपरि सेलना गिरै त ठाहर नाहि ॥५५॥
 कबीर सोई मुमु धनि है जा मुग कहीशै रामु ।
 देही भिसरी नापुरी पवित्रु होइगो ग्रामु ॥५६॥
 कबीर सोई कुल भली जा कुल हरि को दासु ।
 जिह कल दासु न उपरै सो कुल टाक पलासु ॥५७॥
 कबीर है गइ धावन सवन घन लाग भजा फहराइ ।
 दया मुग ने भिया भली गइ हरि सिमरन दिन जाइ ॥५८॥
 कबीर गनु जगु हउ किरियो सोदगु बंधु अदाइ ।
 जेउ नाहु को कही सभ देगी दोकि गजाइ ॥५९॥
 सारंग सोगी दीधरे अंधा निरिअयो आइ ।
 गोवि विरह सजड़ीगरी जगनु जलंगे जाइ ॥६०॥
 मुदा रंगु कबीर का उपरियो नुगु समागु ।
 हरि का सिमरनु छाडि कै गरिबी आया मागु ॥६१॥
 कबीर गनु नउ निगे जारेई गारि न लीजै सोइ ।
 कीं सारंग जेठेई जगदे हउ मु सोइ ॥६२॥
 कबीर का हरि हउ निर देपनी निर सति धेनु रीति ।
 निर न सोय नोय निर निर सति सारंग सरीर ॥६३॥
 कबीर का हरि हउ नउ कबीर सोइ नोय नोय सोइ ।
 नउ नउ नउ नउ नउ नउ नउ नउ नउ नउ ॥६४॥

कबीर नैन निहारंउ तुम्ह कउ सँवैन सुनउ तुअ नाँउ ।
 ज्येण उँचरंउ तुअ नाम जी चरन कमल रिदं ठाउ ॥६१॥
 कबीर सुरग नरक ते मै रहिओ सतिगुर के परसादिं ।
 चरन कमल की मउज महि रहंउ अंति अरु आदि ॥६२॥
 कबीर चरन कमल की मउज को कहि कैसे उनमानं ।
 कहिवे कउ सोभा नही देखा ही परवानु ॥६३॥
 कबीर देखि कै किह कहउ कहे न को पतीआइ ।
 हरि जैसा तैसा उही रहउ हरखि गुन गाइ ॥६४॥
 कबीर चुगै चितारै भी चुगै चुगि चुगि चितारै ।
 जैसे बचरहि कृंज मन माइआ ममता रे ॥६५॥
 कबीर अंधर घनहरु छाइआ बरखि भरे सरताल ।
 चात्रिक जिउ तरसत रहै तिन को कउनु हवालु ॥७०॥
 कबीर चकई जउ निसि बीछुरै आइ मिलै परभाति ।
 जो नर बिहारे राम सिउ ना दिन मिलै न राति ॥७१॥
 कबीर रैनाइर बिछोरिआ रहु रे संख मझुरि ।
 देवल देवल धाहड़ी देसहि उगवत सूर ॥७२॥
 कबीर सूता किआ करहि जागुं रोइं भै दुख ।
 जां का बांसा गोर मंहि सों किउ सोवै सुख ॥७३॥
 कबीर सूता किआ करहि उठिं कि न जपहि मुरारि ।
 इंक दिन सोवनु होइ गो लांवे गोड पंसारि ॥७४॥
 कबीर सूता किआ करहि बैठा रहु अरु जागु ।
 जांके संग ते बीछुरा ताही के संग लागु ॥७५॥
 कबीर संत की गँल न छोडीअे मारगि लागा जाउ ।
 पैखत ही पुनीत होइ भेयत जपीअे नाँउ ॥७६॥
 कबीर साकत संगु न कीजीअे दूरहि जाईअे भागि ।
 बासनु कारो परसीअे तउं कहु लागै दागु ॥७७॥

कबीर रामु न चेतिथो जरा पहुँचिथो आइ ।
 लागी मंदिर दुआर ते अब किआ काढिआ जाइ ॥७८॥
 कबीर कारनु सो भइथो जो कीनो करतार ।
 तिस बिनु दूसर को नही एकै सिरजनहार ॥७९॥
 कबीर फल लागे फलनि पाकन लागे आव ।
 जाइ पहुँचहि रासम कउ जउ बीचि न खाही कांठ ॥८०॥
 कबीर ठाकुर प्रजहि मोलि ले मन हठ तीरथ जाहि ।
 देखा देगी स्वांगु धरि भूले भटका खाहि ॥८१॥
 कबीर पादन परमेसुर कीआ पूजै सभु संसार ।
 तुन भरवासे जो रहे बूढ़े काली धार ॥८२॥
 कबीर कागड़ की आँखरी मनु के करम कपाट ।
 पादन योगी पिरथमी पंडित पादो बाट ॥८३॥
 कबीर कानि रगना अथदि करु अथ करना मु दानात ।
 पादें कटु न छोड़गा जउ मिर पर आवै कालु ॥८४॥
 कबीर देखा जेनु हठ देगिआ नैमी भोई लाग ।
 देखा देखा जेनु हठ मृना मनिहीना नापाक ॥८५॥
 कबीर देगी मुनि कउ जमु न करै निगकार ।
 मिनि हठ जगना मिनिजना मु जनिआ परनिदुगार ॥८६॥
 कबीर देखागी भटका भवर भागु मम दाग ।
 मिनिजिउ अथदि कबीर की मिनिजिउ मम निराग ॥८७॥
 कबीर देखागी पणिजे कटुस जी नहि रदि मरुसोरान ।
 कटु सो देखागी के आँखदि देखा मम ॥८८॥
 कबीर देखागी देखागी जहा मने जाइ मार ।
 कटु मरु मरु देखागी मरु मरु मरु मरु मरु ॥८९॥
 कबीर देखागी देखागी देखागी देखागी देखागी ॥९०॥
 कबीर देखागी देखागी देखागी देखागी देखागी ॥९१॥

कबीर वैसनो हूआ त किआ भइआ माला मेलीं चारि ।
 बाहरि कंचनु बारहा भीतरि भरी भंगार ॥६१॥
 कबीर रोड़ा होइ रहु बाट का तजि मन का अभिमानु ।
 औसा कोई दासु होइ ताहि मिलै भगवानु ॥६२॥
 कबीर रोड़ा हूआ त किआ भइआ पंथी कउ दुखु देइ ।
 औसा तेरा दासु है जिउ धरनी महि खेइ ॥६३॥
 कबीर खेह हुई तउ किआ भइआ जौ उडि लागै अंग ।
 हरिजनु औसा चाहीअै जिउ पानी सरबंग ॥६४॥
 कबीर पानी हूआ त किआ भइआ सीरा ताता होइ ।
 हरिजनु औसा चाहीअै जैसा हरि ही होइ ॥६५॥
 ऊच भवन कनकामनी सिखरि धजा फहराइ ।
 ता ते भली मधूकरी संत संग गुन गाइ ॥६६॥
 कबीर परभाते तारे खिसहि तिउ इहु खिसै सरीरु ।
 ए दुइ अखर ना खिसहि सो गहि रहियो कबीरु ॥६७॥
 कबीर कोठी काठ की दहदिसि लागी आसि ।
 पंडित पंडित जलि मूए मूरख उवरे भागि ॥६८॥
 कबीर संसा दूरि करु कागद देह बिहाइ ।
 बावन अखर सोधि कै हरि चरनी चितु लाइ ॥६९॥
 कबीर संतु न छाडै संतई जउ कोटिक मिलहि असंत ।
 मलिआगरु भुयंगम वेढियो त सीतलता न तजंत ॥७०॥
 कबीर मनु सीतलु भइआ पाइआ ग्रहम गिआनु ।
 जिनि जुआला जगु जरिआ सु जन के उदक समानि ॥७१॥
 कबीर सारी सिरजनहार की जानै नाही कोइ ।
 कै जानै आपन धनी कै दासु दीवानी होइ ॥७२॥
 कबीर भली भई जो भउ परिया दिसा गई सभ भूलि ।
 ओरा गरि पानी भइआ जाइ मिलियो डलि कूलि ॥७३॥

कबीर रामै राम कहु कहिवे माहि द्विवेक ।
 एकु अनेकहि मिलि गइआ एक समाना एक ॥११७॥
 कबीर जा घर साध न सेवीअहि हरि की सेवा नाहि ।
 ते घर मरघट सारखे भूत बसहि तिन माहि ॥११८॥
 कबीर गूंगा हूआ बाबरा बहरा हूआ कान ।
 पावहु ते पिगल भइआ मारिआ सतिगुर बान ॥११९॥
 कबीर सतिगुर सूरमे बाहिआ बानु जु एक ।
 लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु ॥१२०॥
 कबीर निरमल बूंद अकास की परि गई भूमि विकार ।
 बिनु संगति इउ मानई होइ गई भठ छार ॥१२१॥
 कबीर निरमल बूंद अकास की लीनी भूमि मिलाइ ।
 अनिक सिआने पचि गए ना निरवारी जाइ ॥१२२॥
 कबीर हज कावे हउ जाइ था आगे मिलिआ खुदाइ ।
 सांई मुक्त भिउ लरि परिआ तुमै किन्हि फुरमाई गाइ ॥१२३॥
 कबीर हज कावे हंइ होइ गइआ केती बार कबीर ।
 सांई मुक्त महि किआ खता मुखहु न बोलै पीर ॥१२४॥
 कबीर जीअ जु मारहि जोरु करि कहते हहि जु हलालु ।
 दफतर दई जब काढि है होइगा कउनु हवालु ॥१२५॥
 कबीर जोरु कीआ सो जुलसु है लेइ जबबु खुदाइ ।
 दफतर लेखा नीकअ मार मुहै मुहि खाइ ॥१२६॥
 कबीर लेखा देना सुहेला जउ दिल सूची होइ ।
 उसु साचे दीवान माहि पला न पकरै कोइ ॥१२७॥
 कबीर धरती अरु आकास महि दुई तूं बरी अवध ।
 खट दरसन संसे परे अरु चउरासीह सिध ॥१२८॥
 कबीर मेरा मुक्त महि किहु नही जो किहु है सो तेरा ।
 तेरा तुक्त कउ सउपते किआ लागै मेरा ॥१२९॥

नीचे लोइन करि रहउ ले साजन घट माहि ।
 सभ रस खेलत पीअ सउ किसी लखावउ नाहि ॥१४३॥
 आठ जाम चउसठि घरी तुअ निरखत रहै जीउ ।
 नीचे लोइन कीउ करउ सभ घट देखउ पीउ ॥१४४॥
 सुनु सखी पीअ महि जीउ बसै जीअ महि बसै कि पीउ ।
 जीउ पीउ ब्रूमहु नही घटि महि जीउ कि पीउ ॥१४५॥
 कबीर बामनु गुरु है जगत का भगतन का गुरु नाहि ।
 अरुअ उरुअ कै पचि मूआ चारउ वेदहु माहि ॥१४६॥
 हरि है खांडु रेनु महि बिखरी हाथी चुनी न जाइ ।
 कहि कबीर गुरि भली बुझाई, कीटी होइ कै खाइ ॥१४७॥
 कबीर जउ तुहि साध पिरंम की सीसु काटि करि गोइ ।
 खेलत खेलत हाल करि जो किछु होइ त होइ ॥१४८॥
 कबीर जउ तुहि साध पिरंम की पाके सेती खेलु ।
 काची सरसउ पेलि कै ना खलि भई न तेल ॥१४९॥
 दूंदत डोलहि अंध गति अरु चीन्हत नाही संत ।
 कहि नामा किउ पाईअै विनु भगतहु भगवंतु ॥१५०॥
 हरि सो हीरा छाडि कै करहि आन की आस ।
 ते नर दोजक जाहिगे सति भाखै रविदास ॥१५१॥
 कबीर जउ ग्रिहु करहि त धरमु करु नाहि त करु वैरागु ।
 वैरागी बंधनु करै ता को बडो अभागु ॥१५२॥

स्वर्ण कलश है। उसमें (ब्रह्मानंद रस की) एक निर्मल धारा चू रही है जो शनैःशनैः रस में रस की मात्रा बढ़ती जाती है। (इस रस के पान करने के लिए) एक अनुपम बात यह है कि पवन ही इस रस के लिए प्याले के रूप में सुसज्जित किया गया है। (मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि) तीनों लोकों में इस रस का पीने वाला एक योगिराज कौन है ? कबीर कहता है कि पुरुषोत्तम का ज्ञान इस प्रकार प्रकट हुआ है और कबीर उसी रग में रंजित हो गया है। समस्त संसार तो भ्रम में भूला हुआ है। केवल मन इस राम रूपी रसायन* में मतवाला हो गया है।

राग गउड़ी

१

अब राम रूपी जल ने मुझ जलते हुए को पा लिया है और उन जल ने मेरे जलते हुए शरीर को बुझा दिया है। (तुम अपने मन को मारने के लिए वन जाते हो किंतु उस जल के बिना भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस अग्नि से सुर नर जल चुके हैं—(उस अग्नि से) राम रूपी जल ने भक्तों को जलाने से बचा लिया। इस भव सागर में एक सुख-सागर भा है और पान करने से उसका जल कभी कम नहीं होता। कबीर कहता है कि तू सारंपाणी (विश्वात्मा) का भजन कर क्योंकि राम रूपी जल से ही तेरी तृष्णा (प्यास) बुझ सकी है।

२

हे माधव, तेरे आनंद रूपी जल को पीते-पीते आज तक मेरी प्यास नहीं बुझी। (क्योंकि) इस जल में (वासना की) आग अधिकाधिक उठी हुई है। (यहाँ बड़वाग्नि से तात्पर्य है। तू यदि सागर है तो मैं मछली हूँ यद्यपि मैं जल में रहते हुए भी जल से रहित हूँ। तू पिंजड़ा है तो मैं तेरा शुक हूँ। (इस पिंजड़े में रहते हुए) यम रूपी

*वह औपधि जिसके खाने से मनुष्य वृद्ध या बीमार नहीं होता।

५

अचर, चर, फीट और पतंग के अनेक जन्मों में हमने बहुत रंग-रंग किए । हे राम, जब मेरे हमने गर्भ में निवास किया, तब मेरे हमने इन योनियों के अनेक घर बसाए हैं । (इस जन्म में) कभी हम योगी हैं, कभी ब्रह्मचारी, कभी तपस्वी और कभी ब्रह्मचारी । कभी छत्रपति राजा और कभी भिलारी हैं । किंतु इतना निश्चय है कि शाक्त मर जाते हैं और संत जीवित रहते हैं क्योंकि वे जितना मेरे रामामृत पीते हैं । कवीर कहता है कि हे प्रभु, आप कृपा कीजिए । जो कुछ भी मुझ में अभाव हो उसे कृपा पूरा कर दीजिए ।

६

कवीर ने ऐसा आश्चर्य देखा है कि यह संसार दही (ब्रह्म) के घोलने में पानी (माया) का मंथन कर रहा है । गधा (कपटी गुह या कपटी मन) दही अंगूरी बेल (ब्रह्म-ज्ञान) चर रहा है और वह (अपने अहंकार में) हँसता और रेंकता (हीस-हीग करता) रहता है और मरता है । भैंस (माया) मुख रहित बल्लड़ा (अज्ञान) उत्पन्न करती है जो पृथ्वी-तल पर प्रमत्त होकर (जीवों का) भक्षण करता है । कवीर कहता है कि इस खेल का सारा रहस्य मुझ पर प्रकट हो गया । भेड़ (वासना) बकरों के बच्चे लेले (धार्मिक पुस्तकों) का स्तन-पान करती है । कवीर कहता है कि राम में रमण करते हुए (शुद्ध) मति मुझ में प्रकट हो गई मैंने यह सरल युक्ति (सांझी गुरि) प्राप्त की है ।

७

जिस प्रकार जल छोड़कर मछली बाहर अनेक कष्ट पाती है उसी प्रकार पूर्व-जन्म में तप से रहित होकर इस जन्म में मेरी बहुत बुरी दशा हुई । हे राम, अब कहो कि मेरी क्या गति होगी ? क्या बनारस छोड़कर मेरी मति भ्रष्ट हो गई ? मैंने अपना सारा जन्म तो बनारस में व्यतीत किया और मरते समय मैं मगहर में उठ कर चला आया ।

काशी में मैंने बहुत वर्षों तक तप किया। लेकिन मरते समय मैं मगहर का निवासी हो गया। ऐ कबीर, काशी और मगहर को तो तुने समान समझा है किंतु अपनी ओछी भक्ति से तू कैसे (भव-सागर के) पार उतरेगा ? तू इस महामंत्र (गुरु) को गर्ज कर कह दे (जिसे बनारस के स्वामी शिव और सभी लोग जानते हैं कि) कबीर मरने पर भी श्री राम में रमण करता है।

८

जिम शरीर में सुगंधित द्रव-पदार्थ और चंदन मल-मल कर लगाया जाता है वही लकड़ी के साथ जलता है। इस शरीर और धन की क्या बड़ाई है कि पृथ्वी पर गिर पड़ने (मर जाने) के बाद फिर उठाया नहीं जा सकता। जो लोग रात को सोते हैं और दिन में काम करते हैं और एक क्षण भी ईश्वर का नाम नहीं लेते, उनके हाथ में डोर है शासन करने वाले हैं और वे मुख में तांबूलादि चबाए हुए हैं। किंतु मरते समय वही लोग (अपनी अस्थी पर) चोर की गति बधि गए हैं। जो लोग युक्ति से धीरे-धीरे हरि का गुण गान करने हैं वे राम ही राम में रमण करते हुए मुख पाते हैं। हरि ने ही कृपा करके मुक्त में नाम की दृढ़ता दी और उन्हीं ने अपनी सुगंधि मुक्त में गमा दी है। कबीर कहता है कि रे अंधे, तू चेत। तेजस राम ही राज्य है और यह समस्त प्रपंच झूठा है।

९

जब मैंने मोक्षिद को जान लिया है तो जो मेरे लिए यम थे वही उलट कर मेरे लिए राम हो गए। इस स्थिति में दुःख के विनाश होने पर मेरे स्थिति बिया। मेरे शत्रु ही उलट कर मेरे लिए मित्र हो गए। मेरे शत्रु ही उलट कर दिनचिंतक सत्रन बन गए हैं। जब मैंने अपनी ने मुक्ति निकालकर मान लिया है। जब मैंने मोक्षिद को जान लिया है तो शत्रु हैं। जो शरीर में कणोली बाधाएँ थीं वे

सब उलट कर सुख-पूर्ण सहज समाधि में परिवर्तित हो गईं । जो अपने आप को स्वयं पहिचान लेता है उसे न तो रोग और न त्रिविध ताप व्याप सकते हैं । मेरा भी उलट कर शाश्वत और नित्य हो गया । मैंने इसे तब समझा जब मैं जीवेन-मृतक हो गया । कबीर कहता है, इस प्रकार सहज सुख में समा जाओ और न तो स्वयं डरो, न दूसरे को डराओ ।

१०

शरीर के मरने पर जीव किस स्थान को जाता है और वह किस प्रकार अतीत अनाहत शब्द में रत हो जाता है ? जो राम को जानते हैं वही इस तत्व को पहिचानते हैं जिस प्रकार गूँगा शक्कर खाकर मन में प्रसन्न होता है । मेरा ईश्वर (वनवारी) ऐसा ज्ञान कहता है—रे मन, तू सुपुष्पा नाड़ी में वायु को दृढ़ कर ऐसा गुरु कर कि फिर कोई गुरु न करना पड़े । तू ऐसे पद में रमण कर कि फिर अन्य पद में रमण न करना पड़े । तू ऐसा ध्यान धर कि फिर दूसरा ध्यान न धरना पड़े । तू इस प्रकार मर कि फिर कभी न मरना पड़े । गंगा पिंगला नाड़ी) को उलट कर तू यमुना (इडा नाड़ी) में मिला दे और बिना संगम-जल के तू मन ही मन में (अपनी अनुभूति में) स्नान कर । यह व्यवहार (संसार का प्रपंच) तो नर्क (लोचारक) के समान है । इस प्रकार तत्व का विचार कर लेने के अनंतर और क्या विचारने की आवश्यकता ? जल, तेज, वायु, पृथ्वी और आकाश जैसे एक दूसरे के समीप रहते हैं, इसी प्रकार तू हरि के समीप रह । कबीर कहता है कि निरंजन ब्रह्म का ध्यान कर । तू ऐसे घर को जा, जहाँ से लौट कर फिर आना न हो ।

११

जिस सुख के माँगने पर आगे दुःख आता है, वह सुख माँगते हुए हमें अच्छा नहीं लगता । अभी तक मेरी आत्मा को विषय-

वासना से सुख की आशा है। फिर राजा राम में निवास कैसे हो सकेगा ? जिस सुख से ब्रह्मा और शिव भी डरते हैं उसी सुख को हमने सच्चा सुख समझ लिया है। सनकादिक, नारद, मुनि और शेष ने भी इस शरीर में मन की वास्तविकता नहीं पहिचानी। हे भाई, इस मन को कोई खोजे कि यह शरीर छूटने पर कहाँ समा जाता है। श्री गुरु के प्रसाद से ही जयदेव और नामदेव इन्हींने भक्ति का प्रेम समझा है। इस मन का न तो कहीं आना होता है न जाना। इसके संबंध में जिसका भ्रम दूर हो जाता है, उसी ने सत्य पहिचाना है। इस मन का न कोई रूप है, न इसकी कोई रेखा है। यह (ब्रह्म की आज्ञा से ही) उत्पन्न होता है और उसी आज्ञा को समझ कर उसी में लीन हो जाता है। इस मन का रहस्य कोई बिरला ही जानता है। इसी मन में सुखदेव जी लीन हुए। समस्त शरीरों में केवल एक ही जीवात्मा है और इसी जीवात्मा में कबीर रमण कर रहा है।

१२

एक ही नाम जो रात्रि दिवस जाग रहा है, उसी से प्रेम कर कितने ही (साधक) सिद्ध हो गए ! साधक, सिद्ध और सभी मुनि अपनी-सी कर हार गए किंतु एक नाम का कल्पतरु ही उन्हें तारने में समर्थ हो सका। जो हरि करता है वही होता है, दूसरा नहीं। कबीर कहता है कि उसने तो राम का नाम पहिचान लिया है।

१३

हे जीव, तू निर्लज है, तुझे (थोड़ी भी) लज्जा नहीं है। तू हरि को छोड़ कर क्यों किसी के पास जाता है ? जिसका स्वामी ऊँचा (सर्वशक्तिमान) है, वह दूसरे के घर जाते हुए शोभा नहीं देता। जो तू अपने स्वामी (की अनुभूति से) भरपूर रहेगा तो वह तेरे ही साथ रहेगा, तुझसे दूर नहीं। जिसके चरणों की शरण में स्वयं कमला (लक्ष्मी) है उसके भक्त के घर बोलो, क्या नहीं है ? सब कोई (समस्त

ब्रह्मांड) जिसकी बात कहते रहते हैं वही तो समर्थ है और दान करने वाला स्वामी है। कबीर कहता है, ससार में पूर्ण वही है जिसके हृदय में (हरि के अतिरिक्त) और कोई दूसरा (स्वामी) नहीं है।

१४

किसका पुत्र, किसका पिता, किसका कौन है ? कौन मरता है, कौन दुःख देता है ? यह हरि ही एक ऐंद्रजालिक है, और उसी ने संसार में यह माया फैला रक्खो है। हाय मैया, मैं उस हरि के वियोग में कैसे जी सकती हूँ। (इसे आत्मा का कथन मानना चाहिए।) किसका कौन पुरुष है और किसकी कौन स्त्री है ? इस तत्व को शरीर रहते विचार लो। कबीर कहता है कि मेरा मन तो इसी ठग से माना है—(यही ठग मुझे पसंद आया है) जब मैं इस ठग को पहिचान लेता हूँ तो उसकी सारी ठग-विद्या (माया) मेरी आँखों से दूर हट जाती है।

१५

अब मुझे राजा राम की सहायता मिल गई है। जिस कारण मैंने जन्म और मरण (के पाश) काटकर परम गति प्राप्त की है। मैंने अपने को साधुओं की संगति में लीन कर लिया है। और पंच दूतों (इंद्रियों) से अपने को छुड़ा लिया है। मैं अपनी जिह्वा से अमृतमय नाम का जाप जपता हूँ और मैंने अपने को (प्रभु का) विना मोल का दास बना लिया है। सतगुरु ने मुझ पर विशेष उपकार किया है। उन्होंने मुझे संसार-सागर से निकाल लिया है। उनके चरण-कमलों से मेरी प्रीति लग गई है और मेरे चित्त में गोविंद का दिनोदिन निवास होता है। माया का जलता हुआ अंगार बुझ गया और नाम का सहारा होने से मन में संतोष हुआ। मेरे स्वामी प्रभु जल-थल में व्याप्त हो रहे हैं और जहाँ मैं देखता हूँ वहाँ मुझे मेरे अंतर्ग्रामी दीख रहे हैं। मैंने अपनी भक्ति स्वयं ही दृढ़ की है क्योंकि पूर्वजन्म के संस्कार मुझे

मिल गए हैं। कबीर का स्वामी ऐसा गरीब निवाज है कि जिस पर वह कृपा करता है वही परिपूर्ण हो जाता है।

१६

जल में छूत है, थल में छूत है और किरणों में भी (ग्रहण के अवसर पर) छूत है। जन्म में भी छूत है, और फिर मरने में भी छूत है। इस प्रकार तूने सूतक से जल कर (परज कर) अपना नाश कर लिया। कह तो रे पंडित, कौन पवित्र है? मेरा मित्र बन कर ऐसा ज्ञान गाता फिरता है! आँखों में भी छूत है (कहीं शूद्र की दृष्टि न पड़ जाय) बोली में छूत है (कहीं शूद्र से बात न हो जाय) और कानों में भी छूत है। (कहीं शूद्र की बात कान में न पड़ जाय)। उठते बैठते तुझे छूत लगती है। यहाँ तक कि भोजन में भी छूत पहुँच जाती है। इस प्रकार कर्म-बंधन में फँसने की विधि तो सभी कोई जानते हैं, मुक्त होने की विधि कोई एक ही जानता है। कबीर कहता है कि जो राम को हृदय में विचारते हैं उन्हें छूत नहीं लगती।

१७

हे राम, यदि तुम्हें अपने भक्त का ध्यान है तो एक भगड़ा सुलभा दो। यह मन बड़ा है या वह जिसमें मन अनुरक्त है? राम बड़ा है, या वह जो राम को जानता है? ब्रह्मा बड़ा है या वह जिसे उसने उत्पन्न किया है? वेद बड़ा है या वह जहाँ से वह उत्पन्न हुआ है? कबीर कहता है कि मैं (इस भगड़े से ही) उदास हो गया हूँ। (मैं पूछता हूँ, तीर्थ बड़ा है या हरि का दास?)

१८

ए भाई, देखो ज्ञान की आँधी आई है। माया से बाँधी हुई यह भ्रम की सारी दृष्टि उड़ गई है। द्विविधा की दो धूनियाँ (योभ रोकने वाली खंभियाँ) गिर पड़ीं और मोह का बल्लेड़ा (म्याल) टूट गया। तृप्ति की छानी पृथ्वी के ऊपर गिर पड़ी और दुर्बुद्धि का भांडा फूट

फूट गया। इस आँधी के बाद जो जल बरसा उसी से यह तेरा भक्त भीग गया। कबीर कहता है कि जब उदय होते हुए सूर्य को पहिचाना तो मन प्रकाशित हो उठा। (यहाँ सूर्य का तात्पर्य ब्रह्म-ज्ञान से है।)

१६

न हरि का यश सुनता है, न हरि का गुण गाता है। केवल चकवाद ही में आकाश को (पृथ्वी पर) गिराना चाहता है। ऐसे लोगों से क्या कहा जाय ? जिन्हें प्रभु ने भक्ति से वर्ज्य कर रक्खा है, उनसे हमेशा डरते ही रहना चाहिए। स्वयं तो एक चुल्लू भर पानी नहीं दे सकते और उसकी निंदा करते हैं जिसने पृथ्वी पर गंगा बहा दी है। वे लोग उठते-बैठते कपट-चक्र चलाते हैं। स्वयं तो नष्ट होते ही हैं, दूसरों को भी नष्ट करते हैं। बुरी चर्चा को छोड़ कर और कुछ जानते ही नहीं हैं। स्वयं ब्रह्मा भी यदि कुछ कहे तो वे उसे नहीं मान सकते। स्वयं तो अपने को खोते हैं, दूसरों को भी खोते हैं। वे आग लगाकर स्वयं उस घर में सोते हैं। स्वयं तो काने हैं किंतु दूसरों पर हँसते हैं। उन्हें देखकर कबीर केवल लजित ही होते हैं।

२०

पितरों के जीवन-काल में उन पर श्रद्धा तो रही नहीं अब उनके मर जाने पर उनका श्राद्ध करते हैं ! फिर बेचारे पितर भी क्या कुछ पाते हैं ? (श्राद्ध की चीज़ें तो) कौवे और कुत्ते ही खाते हैं। कोई मुझे बतला भी तो दे कि कुशलता क्या है ? कुशल कुशल करते तो सारा संसार नष्ट हो रहा है। (केवल कहने से ही) कैसे कुशलता हो सकती है ? मिट्टी के देवी या देवता बनाकर उसके आगे जीवों का बलिदान करते हैं। तुम्हारे पितर तो ऐसे हैं कि अपनी कही हुई (मांगी हुई) चीज़ भी नहीं ले सकते। जो लोग निर्जीव की पूजा के लिए सजीव का बलिदान करते हैं उनके लिए अन्तिमकाल बहुत भयानक है। ये संसारी लोग तो राम-नाम की गति न जान सकने से भय में डूबे पड़े

अनुसार उन्हें पास रहने वाला ब्रह्म पास मालूम देता है। जिन्होंने ब्रह्म-रस का पान किया है, वे जानते हैं कि ओरी का जल उलट कर बरेडा (झानी) का जल हो जाता है (अर्थात् उनकी बाह्य इंद्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं।) (हे मन) तेरे निर्गुण रूप का रहस्य किससे कहूँ ? (जो उसे समझ सके) ऐसा कोई विवेकी (ज्ञानवान) हाँ होगा। कबीर कहता है कि जो जैसा पलीता देता है, उसे उसी प्रकार की आग दीखती है।

२३

‘सहज’ की ऐसी विचित्र कथा है जो कही नहीं जा सकती। वहाँ न वर्षा है, न सागर, न धूप, न छाया, न उत्पत्ति और न प्रलय ही है। न जीवन है न मृत्यु, न वहाँ दुःख का अनुभव होता है न सुख का। वहाँ शून्य की जागृति और समाधि की निद्रा दोनों ही नहीं हैं। न वह तोली जा सकती है, न वह छोड़ी जा सकती है, न वह हलकी है, न भारी। उसमें ऊपर नीचे की कोई भावना नहीं है, वहाँ रात और दिन की स्थिति नहीं है। न वहाँ जल है, न पवन। और वहाँ अग्नि भी नहीं है। वहाँ तो एकमात्र सत-गुरु का साम्राज्य है। वह अगम है, इंद्रियों से परे है, केवल गुरु की कृपा से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। कबीर कहता है कि मैं अपने गुरु की बलि जाता हूँ। उन्हीं की अच्छी संगति में मिलकर रहना चाहिए।

२४

हमारा राम एक ऐसा नायक (व्यापार करने वाला) है कि उसने सारे संसार को बनजारा (व्यापार करने वाला) बना दिया है। उस संसार ने पाप और पुण्य के दो बैल खरीदे और पवन (साँस) की पूँजी सजाई। उसने शरीर के भीतर तृष्णा की गौंनि भर दी, इस प्रकार उसने अपना टांडा खरीदा। (उसे रोकने के लिए) काम और क्रोध-कर वसूल करने वाले हुए और मन की भावनाएँ डाकू बन

गई'। पंच तत्व मिलकर उससे अपना इनाम वसूल करते हैं, इस प्रकार टांडा (भवसागर) के पार उतरा। कबीर कहता है कि ऐ संतो सुनो, अब ऐसी परिस्थिति आ गई है कि घाटी (भक्ति-पथ) पर चढ़ते समय एक बैल (पाप) थक गया है। अब तुम अपनी (तृष्णा की) गोंनि फेंक कर आगे चल पड़ो।

२५

नैहर (पेवकडै) में केवल चार दिन रहता है, फिर तो प्रियतम (साहुरडै) की सेवा में जाना होगा। यह बात अंधे लोग नहीं जानते क्योंकि वे मूर्ख और अज्ञानी हैं। प्रेयसी अपना साज-सामान बाँधकर खड़ी है। क्योंकि विदा कराने के लिए पाहुने आए हुए हैं। वहाँ जो तलाई (छोटी सरोवरी) दीख पड़ रही है, उससे पानी लेने के लिए किस रस्सी की आवश्यकता है? (अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान के स्रोत का जल लेने के लिए किसी ग्रंथ-रूपी रस्सी की आवश्यकता नहीं है।) यदि उसी क्षण रस्सी टूट जाय तो पनिहारी (आत्मा) उठ कर चली जाती है। यदि स्वामी कृपा करे और दयालु हो जाय तो अपना सारा कार्य सँवर जाय। सौभाग्यशालिनी तो उसे ही समझना चाहिए जो गुरु के शब्द का विचार करे। (अन्य स्त्रियाँ तो) कर्म-बंधन (फिरत) में बँधी हुई हैं, उसी में वे घूमती फिरती हैं और उसी प्रकार की बातें कहती हैं, वे बेचारी क्या करें! (परिणाम यह होता है कि) कि वे निराश होकर (इस संसार से) चल खड़ी होती हैं और उनके चित्त में किंचित् भी धैर्य नहीं रहता। कबीर की शरण में जाकर हरि के चरणों से लगी और उसका भजन करो।

२६

योगी कहते हैं कि योग ही श्रच्छा और श्रेयस्कर है, और कोई दूसरा (संप्रदाय) ठीक नहीं है। संडित और मुंडित (जिन्होंने मणि और सिर के बाल मुड़ा लिए हैं) और एक शब्द ~ ~

यही कहते हैं कि हम लोगों ने सिद्धि प्राप्त कर ली है । (परन्तु सच बात यह है कि) हरि के बिना सभी अज्ञानी लोग भ्रम में भूले हुए हैं । अपने को मुक्त कराने के लिए जिस किसी की शरण में जाओ वही अनेक बंधनों में बँधा हुआ है । उनकी (बतलाई हुई) विधि तो जहाँ से उत्पन्न हुई थी, वहाँ ही समा गई और उसी समय विस्मृत हो गई । फिर भी पंडित, गुणी और शूरवीर तो यही कहते हैं कि हम ही (ज्ञान का) दान करने वाले हैं और हम ही बड़े हैं । (यों तो) जिसे समझाओ वही समझता है और बिना समझे संगार में रहता कौन है ? (किन्तु) सतगुरु के मिलने से ही अंधकार ने बचा जा सकता है और (उसकी बतलाई हुई) इन्हीं रीतियों से ज्ञान का माणिक प्राप्त होता है । दाढ़ने और बाएँ विकारों को छोड़ कर (यहाँ वहाँ की बातों में न उलझ कर) सीधे हरि के चरणों में दृढ़ता-पूर्वक रहना चाहिए । कबीर कहता है कि जब गँगा गुड़ खा लेता है तो पूछने पर वह क्या कह सकता है ! (इसी प्रकार ब्रह्म-ज्ञान का अनुभव करने वाला क्या बतलाए कि उसकी अनुभूति क्या है !

२७

शरीर के नष्ट होने पर, जहाँ जो कुछ था वहाँ अब कुछ नहीं है—पाँच तत्व भी वहाँ नहीं रह गए । ऐ वंदे, मैं पूछता हूँ कि इडा, पिंगला और सुषुम्णा ये (नाड़ियाँ) आवागमन में कहाँ चली जाती हैं ? तागा (साँस) टूटने पर आकाश (ब्रह्म-रंभ्र) नष्ट हो जाता है । फिर यह तेरी बोलने की शक्ति कहाँ समा जाती है ? यही संदेह मुझे प्रतिदिन कष्ट देता है और मुझे कोई समझा कर नहीं कहता । (इस माया में) जहाँ न तो ब्रह्मांड है, न पिंड और निर्माणकर्त्ता भी नहीं हैं । (समस्त सृष्टि को) जोड़ने वाला तो सदा अतीत है । फिर यह अतीत कहाँ किसमें रहता है । विनाश होने के पूर्व तक न तो (तेरे) जोड़ने से कुछ जुड़ेगा और न (तेरे) तोड़ने से कुछ टूट ही

नौ गज और दस गज बाने के लिए और इफ़ीम गज ताने के लिए मानना चाहिए ।) उस पुरिया के फैलाव में माठ सूत रक्ते गए और उसमें नव खंड डालकर राछ के द्वारा बहत्तर भाग किए गए । इस प्रकार इस करघे पर बहुत बख़्त लगा । यह बख़्त बिनबाने के लिए (माँ) चली । लेकिन जुलाहा घर छोड़कर जा रहा है । (उसका कारण यह है कि) न तो कपड़ा करघे के बेलन पर लिपटता है और न वह मोर— (लकड़ी की कमनियों के सहारे) आदि से ठीक तरह सधा ही रहता है क्योंकि अधिक माँड़ लग जाने से ढाई सेर कपड़ा पाँच सेर हो गया है । (यदि बुनने की सुविधा के लिए माँड़ कम लगाया जाय और) ढाई सेर को पाँच सेर न किया जाय तो वह भगड़ालू स्त्री भगड़ा करने लगती है । (वह भगड़ा इसलिए करती है कि यदि मेरा कपड़ा अधिक भारी होगा—वास्तव में हो ढाई सेर ही लेकिन यदि वह पाँच सेर के वजन का हो जाय तो ऐसे अधिक मिलेंगे लेकिन बेचारे जुलाहे की मुसीबत यह है कि यदि वह कपड़ा भारी करने के लिए माँड़ अधिक लगता है तो या तो कपड़ा करघे में नहीं लिपटता या कोशिश करने पर भी खिचाव में भोल आ जाता है । सूत का फैलाव तुला नहीं रहता ।) फिर कहीं दिन को भी बैठकर बुना जाता है ? दिन का बाज़ार (बैठ या पैठ) है जहाँ अच्छे अच्छे खरीद करने वाले मालिक आते हैं उनसे ही बरकत होती है । यह कोई वक्त है कपड़े बुनने का ? इस समय यहाँ क्यों कपड़ा बुनवाने के लिए आई है ? (प्रातःकाल कपड़े बुनने का अच्छा समय होता है ।) फिर पास रक्खा हुआ पानी का यह कूँडा भी फूट गया जिससे सारी पुरिया भीग गई । इसीलिए जुलाहे को गुस्सा आ गया । फिर बाने को बुननेवाली जो ढरकी (Shuttle Cock) है वह भी खराब हो गई है । या तो उससे तागा ही नहीं निकलता या यदि निकलता है तो उलझकर रह जाता है । (फिर जुलाहे को भुँभुलाहट क्यों न हो ?) कबीर कहता है कि ऐ

पगली ! (वेचारी) तू यह सारा पसारा छोड़कर जीवन बिता ।

३०

एक (आत्मा की ज्योति उस (एक परब्रह्म की) ज्योति से मिल गई । अब और कुछ हो अथवा न हो । जिस घट (शरीर) में राम-नाम की उत्पत्ति नहीं होती वह घट फूट कर नष्ट हो जाय तो अच्छा है । ऐ सुन्दर साँवले राम, मेरा तुझमें अनुरक्त हो गया है । साधु मिलने से ही सिद्धि होती है इसमें चाहे योग हो या भोग हो । इन दोनों के संयोग से ही राम-नाम से संयोग हो सकता है । लोग समझते हैं कि (जो कुछ मैं कह रहा हूँ) यह एक साधारण गीत है, किंतु वस्तुतः यह ब्रह्म-विषयक विचार है जो काशी में मनुष्य को मरते समय दिया जाता है । गाने वाला और सुनने वाला चाहे जो कोई हो, लेकिन तू हरि के नाम से चित्त लगा । और ऐसा करने से—कबीर कहता है कि—परम गति की प्राप्ति में कोई संदेह नहीं रह जाता ।

३१

जिन्होंने (अपने बचने का) यत्न किया, वे सब हूय गए । इस प्रकार भव-सागर को वेलोग पार नहीं कर सके । कर्म, धर्म और अनेक संयम करते हुए अहंकार की बुद्धि ने उनका मन जला दिया । जो साँस और भोजन का देने वाला स्वामी है उसे तूने मन से क्यों भुला दिया ? तेरा जन्म हीरा और लाल (जैसे अलभ्य रत्नों) की भाँति अमूल्य है, उसे तूने कौड़ी (साधारण ममता और मोह) के बदले दे रक्खा है ! तुझे तृष्णा, तृषा भूख और भ्रम कष्ट देते हैं किंतु इन कष्टों का विचार तू हृदय में नहीं करता । तेरे मन में केवल मंतवाला मान ही रह गया, तूने गुरु के शब्दों को कभी हृदय में धारण नहीं किया । स्वाद से आकर्षित होकर इंद्रियों ने तुझे रस की ओर प्रेरित कर दिया और तू विकार से भरे हुए यौवन का रस लेता फिरता है । कर्मकांड से तू (बुरे) संतां के संग में केवल लोह और काष्ठ की माला (और साधुओं

के आभूषण आदि ही) हृदय में धारण करता है। अनेक योनि और जन्मों में भ्रमित होकर भागते हुए हम थक गए और दुःख महन करते हुए भी अब हम शिथिल हो गए। कवीर कहता है कि अब तो गुरु के मिलने से ही महारम (ब्रह्मानंद) मिलेगा और प्रेम-भक्ति के सहारे इस (भव-सागर) से निस्तार होगा।

६२

कच्चे भगव की तरह यह पागल मन ऐसी हस्तिनि है जिसने अपनी गति में ईश्वर की रचना कर डाली है। (अथवा हे पागल मन ! कच्चे भराव की तरह यह शरीर की हस्तिनि ऐसी है जिसने अपनी बुद्धि के विकास में स्वयं ईश्वर की सृष्टि कर डाली है) और काम-वासना के हाथी उसके वश में इस प्रकार आ गए हैं कि अंकुशों की मार सिर पर सहन करते हैं (लेकिन हटते नहीं)। हे पागल मन, तू विषय-वासनाओं से बच और समझ कर हरि से प्रेम कर। निर्भर होकर हरि का भजन न करने से राम रूपी जहाज़ पकड़ में नहीं आता। हे पागल मन, तूने हाथ पसार कर (विषय-वासनाओं को) उसी प्रकार मुट्ठी में पकड़ लिया है जिस प्रकार बदर (सकरे मुँह के बरतन में से) अनाज मुट्ठी में भर कर निकालना चाहता है। लेकिन छूटने में कठिनाई होने से (वह पकड़ा जाता है और) घर-घर के दरवाज़े नाचता फिरता है। हे पागल मन, माया का व्यवहार तो जैसे (सेमर की) नलनी है जो (देखने में अत्यंत आकर्षक है किंतु भीतर रुई भरी रहने के कारण रस-हीन है) सुगो को आकर्षित कर लेती है। और उस माया का विस्तार उसी प्रकार है जैसे कुसुंभी रंग का जो पानी पड़ते ही फैलता जाता है। हे पागल मन, तूने स्नान करने के लिए अनेक तीर्थ बनाए और पूजने के लिए बहुत से देवताओं को बनाया। लेकिन कवीर कहता है कि हे पागल मन, इनसे तू संसार से मुक्त नहीं हो सकता। तुझे मुक्ति तो हरि की सेवा से ही मिल सकती है।

(राम-नाम का धन इस प्रकार है कि) न तो उसे अग्नि जलाती है, न वायु अपने में लीन करता है और न चारों ओर उसके समीप आ सकता है। इसलिए राम-नाम के धन को संचित करना चाहिए, क्योंकि वह धन कहीं नहीं जा सकता। हमारा धन तो माधव, गोविंद और धरणीधर है। इसी को वास्तव में धन कहना चाहिए। जो सुख गोविंद प्रभु की सेवा में मिलता है, वह सुख राज्य (करने) में भी नहीं प्राप्त हो सकता। इस धन के लिए शिव सनक आदि खोजते-खोजते बीतरागी हो गए! यदि मुकुंद को मन मान लिया जाय और नारायण को जिह्वा, तो यम का बंधन किसी प्रकार भी (गले में) नहीं पड़ सकता। मेरे गुरु ने ज्ञान और भक्ति का धन मुझे दिया इस कारण उनकी सुबुद्धि में ही मेरा मन लग गया। जो मन स्वयं तो (विषय-वासनाओं में) जल रहा है किंतु (ईश्वर-ज्ञान रूपी) जल-बंधन के लिए दौड़ रहा है। (अर्थात् विषय-वासनाओं में जलते हुए भी ईश्वर की अनुभूति रूपी शीतल जल को आने से रोक रहा है) उसका भ्रम-बंधन का भय भाग गया। (अर्थात् वह संसार में ही लीन हो गया।) कबीर कहता है कि ऐ कामदेव के मद से उन्मत्त (मनुष्य), तू अपने हृदय में विचार कर देख। तेरे घर में लाखों और करोड़ों घोड़े और हाथी हैं। (तुझे इतना सुख नहीं है जितना मुझे है क्योंकि) मेरे घर में केवल एक मुरारी ही है।

जिस प्रकार बंदर है जो हाथ की मुट्ठी चनों से भर लेता है और लोभ से नहीं छोड़ सकता, उसी प्रकार यह मनुष्य है। वह लालच से तरह तरह के काम करता फिरता है और उन्हीं के अनुसार बार बार बंधन में पड़ता है। इस प्रकार भक्ति के बिना उसका जीवन व्यर्थ ही

गया । साधु-संगति और भगवत्-भजन बिना उसके लिए कहीं भी सुख नहीं रह सका । जिस प्रकार उद्यान में फूल फूलते हैं और उनकी सुगंधि कोई नहीं लेता । (काल उन्हें नष्ट कर देता है ।) उसी प्रकार जीव अनेक योनियों में भ्रमण करता है और काल बार बार उन्हें नष्ट करता है । यह धन, यौवन, पुत्र और स्त्री केवल दृश्य-मात्र के रूप में मनुष्य को दिये गए हैं । उन्हीं में यह मनुष्य अटक कर उलझ गया है, वह इंद्रियों से प्रेरित जा हो गया है । जीवन की अवधि ही अग्नि है, और यह शरीर जिसका चारों ओर ने शृंगार किया गया है एक तिनके का मटल है (जो पल भर में जल जायगा ।) कबीर कहता है कि भव-सागर पार करने के लिए मैंने सतगुरु की शरण ली है ।

३५

मैले पानी और उज्ज्वल मिट्टी ने इस शरीर की प्रतिमा बनाई गई है । न मैं कुछ हूँ और न कोई चीज़ ही मेरी है । यह शरीर, यह संपत्ति और यह समस्त आनंद हे गोविंद, तेरा ही है । इस मिट्टी में पवन का समावेश किया और गोविंद ने यह माया-प्रपंच चलाया है । कुछ लोगों ने असंख्य धन का संचय किया है किन्तु अंत में उनकी भी कपाल-क्रिया मिट्टी के ढंड़े फोड़ने की भाँति की गई । कबीर कहता है कि अंत में ओसारे में (मकान से हटकर) [खुदें हुए गढ़े (नींव) में उसका अंत होता है] और वह अहंकारी क्षण भर में नष्ट हो जाता है ।

३६

ऐ जीव, राम को इस भाँति जपो जिस भाँति ध्रुव और प्रह्लाद ने हरि का जाप किया था । हे दीनदयालु, मैंने एकमात्र तेरे भरोसे अपने समस्त परिवार को जहाज़ पर चढ़ा लिया है । (अब इस भव-सागर से तू ही पार लगा ।) तू जिससे चाहे उससे अपनी आज्ञा मनवा किंतु इस जहाज़ को तू पार लगा दे । गुरु के प्रसाद से मेरे हृदय में ऐसी बुद्धि

समा गई है कि मैं आवागमन से रहित हो गया हूँ। कबीर कहता है कि एक सारंगपाणि (राम) का ही तू भजन कर। भव-सागर के इस पार और उस पार सभी जगह वही एक दानी है।

३७

(पिछुली) योनि को छोड़कर जब मैं इस जग में आया तो इस संसार की हवा लगते ही मैं अपने स्वामी को भूल गया। अतः हे जीव, तू हरि के गुण गा। (यह आश्चर्य तो देख कि) तू गर्भ-योनि में ऊपर (मुख किए हुए) तप करता था। फिर भी जटराग्नि से तू सुरक्षित रहा। तू चौरीमी लक्ष् योनियो में धूम कर आया है। (अब तू ऐसा भजन कर कि) इस योनि से छूट कर तुझे किसी और जगह न जाना पड़े। कबीर कहता है कि तू सारंगपाणि (राम) का भजन कर जो न आते हुए दीखता है और न जाते हुए जात होता है। (अर्थात् जो सदैव स्थिर और चिरंतन है।)

३८

न तो स्वर्ग-निवास की अभिलाषा करना चाहिए, न नर्क-निवास ने दर्शना चाहिए जो कुछ होना होगा, वह तो हाग ही मन में आशा ही क्यों की जाय? (केवल) राम का गुण गाना चाहिए जिससे परम-पद की प्राप्ति हो। जब क्या है? तप क्या है? संयम क्या है? व्रत और स्नान क्या है? जब तक कि भगवान के भक्ति-भाव की युक्ति न जानी जाय! न तो संपत्ति देखकर प्रसन्न होना चाहिए और न विपत्ति देख कर रोना चाहिए। जैसी संपत्ति है, वैसी ही विपत्ति है। और हाग नहीं जो ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट है। कबीर कहता है कि अब मुझे भाव हो गया कि यह (ब्रह्म संतों के हृदय के भीतर है। वस्तुतः सेवक नहीं है और सेवा उम्मी की अच्छी है जिसके हृदय में मुरारि (ब्रह्म) निवास करने हैं।

३६

रे मन, तेरा कोई नहीं है, तू व्यर्थ ही (औरों का) भार मत खींच । यह संसार तो वैसा ही है जैसा पत्नी का वृत्त-वसेरा । मैंने तो राम-रस पी लिया है जिससे संसार की विषय-वासना के, अन्य रस भूल गए हैं । दूसरों के मरने पर रोने से क्या लाभ ? जब स्वयं अपनी स्थिरता नहीं है । जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह अवश्य नष्ट होगी । इसलिये (मैं क्यों रोऊँ ?) मेरी बलाय दुखों होकर रोय ! जहाँ जैमी सृष्टि है ब्रह्म ने वैसी ही (अवस्था के अनुकूल) उसकी रचना की है । किन्तु लोग उसका (अनुचित रूप में) रस पीने में लगे हुए हैं । कवीर कहता है कि हे वैरागी, तू अपने चित्त में जागृति लाकर राम का स्मरण कर (अथवा कवीर कहता कि हे चित्त, तू चैतन्य होकर वीतराग से राम का स्मरण कर ।)

४०

कामिनी आँखों में आँसू भर कर और लम्बी साँस लेकर (अपने स्वामी का) मार्ग देख रही है । न तो (अधिक अश्रुओं से) उसका हृदय भीगता है । (इस डर से कि अधिक अश्रुओं से नेत्र-ज्योति धूमिल न पड़ जावे) और न अपने स्थान से उसका पैर हटता है, (न कहीं जाती है, इस डर से कि न जाने कब उसके स्वामी उसे दर्शन देने चलें आवें) उसे तो एकमात्र अपने (स्वामी) हरि के दर्शन पाने की आशा है । ए काले काग, तू क्यों नहीं उड़ जाता ? जिससे मुझे अपने प्यारे राम शीघ्र ही मिल जावें ? कवीर कहता है कि जीवन के मोक्ष के लिये हरि की भक्ति करनी चाहिये । एक नारायण के नाम का आधार ही लिया जाय और जिह्वा से राम में ही रमण किया जाय (या जिह्वा से राम-नाम ही उच्चारण किया जाय ।

४१

आस-पास तुलसी के घने वृक्ष हैं । बीच में बनारस गाँव है ।

इसका सौंदर्य देख कर (परमात्मा रूपी) ग्वालनि मोहित हो गई है। (कबीर कहते हैं कि ऐ ग्वालनि, तू यहीं निवास कर) मुझे छोड़ कर कहीं भी आना-जाना छोड़ दे। हे (प्रभु) सारंगधर, मेरा मन तुम्हारे ही चरणों में लग गया है। तुम तो उसी को मिलते हो जो परम सौभाग्यशाली है। यों तो समस्त वृंदावन के मन को हरने वाले कृष्ण गोपाल गायें चराते हुए (ईश्वर माने जाते हैं) किन्तु ऐ सारंगधर, तुम जिसके स्वामी हों, वह मैं हूँ और मेरा नाम कबीर है।

४२

कितनों ही ने बहुत से वस्त्र पहिन रखे हैं और कितनों ही ने वन में वास कर लिया है किंतु ऐ मनुष्य, ईश्वर से धोखा करने में तुम्हें क्या मिला ? जल में अपना शरीर डुबाने से तुम्हें क्या लाभ हुआ ? ऐ जीव, मैं जानता हूँ कि तू नष्ट होगा। अरे मूर्ख, अविगत (ब्रह्म) को समझ। मैंने जहाँ जहाँ देखा फिर वहाँ दूसरी बार दृष्टि भी नहीं की क्योंकि (सभी) माया के साथ लिपटे हुए हैं। ज्ञानी, ध्यानी तो बहुत उपदेश करने वाले हैं और यह सारा संसार एक प्रपंच ही है। कबीर कहता है कि एक राम-नाम के बिना यह संसार माया से अंधा हो रहा है।

४३

रे मन, तू अपना भ्रम छोड़ दे और निस्संकोच होकर प्रकट रूप से कार्य कर। (ममत्ता ले कि) तू इस माया से दंडित किया गया है। क्या शूरवीर कभी सम्मुख संग्राम से डरता है ? या सती स्त्री क्या कभी (अंतर) संपत्ति का संचय करती है ? रे पागल मन, तू अपनी अस्थिरता छोड़ दे। जब तूने अपने हाथ में (सत्य-व्रत) का सिंघोरा ले रखा है तब अपने को जला कर समाप्त कर देने में ही तुझे सिद्धि मिलेगी। संसार काम, क्रोध और माया से प्रमित होकर इसी प्रकार असमंजस या अदृक्चन में पड़ा हुआ है। इसलिये कबीर कहता है कि उच्चातिउच्च

है। निन्दक नहीं है जो निन्दा स्वामी के माद, होइ स्वामी नम बोले। तभी तो निन्दक स्वामी कीन नम बनाता है। भक्त कबीर के निन्दकों (एकमात्र निन्दा ही मार्ग रूप है। नसोक्ति (कवि) में निन्दा तो दूब जाता है और हम पार उतर पाते।

गुरु आशा

१

श्री गुरु के चरणी का स्पर्श करते मैं निन्दक करता हूँ और पूछता हूँ कि मैंने यह प्राण क्यों पाये हैं ? यह जाय गमय मैं क्यों अत्यन्त पीड़ नष्ट होता हूँ ? कृपा कर मुझे समझा कर कहिए। ऐ देव, क्या करते मुझे सन्मार्ग पर लगाइए जिससे भय का बंधन दूट जाय और (मैं) जन्म-मरण के दुःख से, फिर कर्म के (मिथ्या) गुन में और जीव की संनियों से छूट जाऊँ। मेरा मन माया-पाश के बंधन को नष्ट नहीं करता और शून्य को पाने की चेष्टा नहीं करता। अपने आत्म-पद निर्माण को नहीं पहिचानता और इस प्रकार डीठ होने से नहीं चूकता। उससे जो कुछ भी कहा जाता है, वह प्रतिकलित नहीं होता और यदि प्रतिकलित होता भी है तो वह उसको जानता नहीं है, इस प्रकार भाव और अभाव दोनों से रहित है। उदय (उत्पन्न होने) और अस्त (नष्ट होने) की बुद्धि मन से नष्ट हो गई है फिर भी वह (मन) सदैव अपनी स्वाभाविक (कलुषित) मनोवृत्तियों में लीन रहता है। (आपकी कृपा से) जब प्रतिबिम्ब (जीवात्मा) बिम्ब (परमात्मा) में मिल जायगा और यह जल से भरा हुआ घड़ा (शरीर) नष्ट होगा तब, कबीर कहता है, (तुम्हारे) ऐसे गुण से भ्रम भाग जायगा और तभी मन शून्य में लीन हो जायगा।

२

(वनारस के संतों का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं—) साड़े

तीन-तीन गज की धोती पहने हुए, पैरों में तिहरे तागे लपेटे हुए, गले में जपमाला डाले हुए और हाथ में लोटे लिए हुए इन कम्बधर्तों को हरि के संत नहीं कहना चाहिए । ये लोग तो बनारस के ठग हैं । मुझे ऐसे संत अच्छे नहीं लगते जो टोकरे भर-भर के पेड़ा गटक जाते हैं । वर्तन माँज कर ऊपर खाना खाते हैं (कि कहीं किसी को भोजन पर छाया न पड़ जाय) और लकड़ी धो कर जलाते हैं । पृथ्वी को खोद कर दो चूल्हे बनाते हैं और फिर सब आदमी मिल कर खाते हैं । वे पापी (अपराध करके) अपराधी बने हुए सदा (यहाँ से वहाँ) घूमते रहते हैं और मुख से ही वे एक दूसरे को अछूत कहते हैं । (अर्थात् किसी का मुख ही देखकर वे छूत मान लेते हैं और स्नान करते हैं ।) इस प्रकार वे अभिमानी हमेशा फिरते रहते हैं और अपने सारे कुटुम्ब को (अपने साथ ही पाप में) डुबाते हैं । वे जहाँ से (द्रव्य आदि) लाते हैं, वह (उसी प्रकार से वहीं या वैसे ही कामों में) नष्ट हो जाता है और वे उसी के अनुसार कर्म भी करते फिरते हैं । कबीर कहता है, (बनारस के इन संतों को छोड़कर) जो सतगुरु से भेंट करता है वह फिर जन्म लेने के लिए (संसार में) नहीं आता ।

३

मेरे पिता ने मुझे आश्वासन दिया । मुझे सुखदायक सेज दी और मुख में अमृत (के समान भोजन) दिया । उस पिता को मैं अपने मन से कैसे भुला दूँ ? मैं न (इस मर्यादा के) आगे जाऊँगा और न अपनी बाज़ी हारूँगा । (न जीवन में असफल होऊँगा ।) मेरी माता मर गई किंतु मैं फिर भी सुखी हूँ । मैं दगली (मोटे वस्त्र की आँगरखी) भी नहीं पहनता फिर भी मुझे पाला (ठंड) नहीं लगता । (अर्थात् पिता के दुलार ने माँ के अभाव की पूर्ति कर दी है ।) मैं उस पिता की बलि जाता हूँ जिनसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ । उन्होंने पंच (इंद्रियों) से मेरा साथ छुड़ा दिया है । अब मैंने पंच (इंद्रियों के विष) को मार कर पैरों के नाचे

दया दिया है और हमिन्मरण ही में मेरा तब और मन भीव रहा है ! हमारा पिता बहुत बड़ा मोमार्ड (कलीन या जिनेटिक) है । मैं (नानी) उस पिता के पास कबीर (किम प्रभार) जाऊँ । यदि मुझे मतगुन मिल जायँ तो वे मेरा पय-प्रदर्शन कर देंगे विशेष रूप से जब जबतः पिता मेरे मन को अच्छे लगने लगे हैं । (हे पिता) मैं तुम्हारा पुत्र हूँ और तुम मेरे पिता हो । एक ही स्थान पर हम दोनों निवास करते हैं । किंतु सेवक कबीर ने तो दोनों को (श्रमने को और पिता को) एक ही समझ सकता है क्योंकि गुरु के प्रसाद से मुझे सब कुछ ठीक तरह में देखने लगा है ।

४

(यह माया का वर्णन है ।) एक पात्र या पत्तल भर पाने के टुकड़े (उरकट-कुरकट) और एक पात्र भर पानी है । उसे खाने के लिए चारों ओर से पंच जोगी बैठे हैं और बीच में एक नकटी रानी है । (तात्पर्य यह कि केवल एक शरीर है और उसका उपयोग करने के लिए पांच इंद्रियाँ हैं और बीच में माया है ।) बाह (हूँ) इस नकटी का नीग्ररा बहुत बढ़ गया है ! किसी विवेकी (ज्ञानवान) को तो तूने नहीं काटा ! इस नकटी (मर्यादान्हीन) माया का निवास सभी स्थानों में है और इसने सभी का शिकार (ग्रहेर) कर मार डाला है । यह (माया) सब संसार की बहन और भांजी बन कर बैठी है (जिसके सभी लोग पैर पड़ते हैं ।) किंतु जिन लोगों ने इसे वरण करके स्त्री बना लिया है उनकी यह दासी हो गई है । हमारा स्वामी (गुरु) बहुत विवेक-पूर्ण है और स्वयं संत-रूप से प्रसिद्ध है । वही हमारे माथे पर स्थित है । (अर्थात् रत्नक है ।) हमारे निकट (उसे छोड़ कर) और कोई नहीं आ सकता । (मेरे गुरु ने उस माया की) नाक काट ली ! कान काट लिए और उसे नष्ट-भ्रष्ट करके टाल दिया है ! कबीर कहता है, यह तीनों लोकों की प्रियतमा (माया) संतों की परम शत्रु है ।

५

योगी, यती, तपस्या करने वाले और संन्यासी अनेक तीर्थों में भ्रमण करते हैं। वे लुंजित (लुंचित—जिनके शरीर के केश उखाड़ लिए गए हैं।) अथवा मुजित (मूँज की मेखला पहने हुए हैं।) या मौन होकर जटा रखाए हुए हैं किन्तु (इतना सब होते हुए भी) अंत में उन्हें मरना पड़ता है। इसलिए (केवल) राम की सेवा करनी चाहिए। जिसकी जिह्वा में राम-नाम का प्रेम है उसका यम क्या कर सकता है? जो लोग शास्त्र, वेद, ज्योतिष और अधिक से अधिक व्याकरण जानते हैं, और जो लोग तंत्र, मंत्र और सभी औषधियाँ पहिचानते हैं, उन्हें भी अंत में मरना पड़ता है। जिन लोगों को राज्य का उपभोग प्राप्त है; छत्र, सिंहासन और अनेक सुन्दर स्त्रियों का संग सुलभ है और पान, कपूर और सुगंधित चंदन उपलब्ध है, उन्हें भी अंत में मरना पड़ता है। मैंने वेद, पुराण और सभी स्मृतियाँ खोज डालीं, किसी के द्वारा भी उद्धार नहीं हो सकता इसलिए कबीर कहता है, केवल इस राम का जाप करो जिससे तुम अपना जन्म और मरण मिटा सको।

६

हाथी रवाव बजाता है, बैल पखावज और कौआ ताल (या कर-ताल) बजाता है। गधा लंबा वस्त्र पहन कर नाचता है और भैंसा भक्ति करता है। राजा राम ने ककड़ी के बड़े पकाये हैं। किन्हीं (वास्तव में) समझने वाले ने उन्हें खाए हैं। सिंह घर में बैठ कर पान लगा रहा है, घीस (बड़ा चूहा) उन पानों की गिलौरियाँ ला रहा है। चूहे का बच्चा घर घर में मंगल गा रहा है और कछुआ शंख बजा रहा है। यह सब उत्सव इसलिए हो रहा है कि उच्च कुलोद्भव पुत्र (जीवात्मा) विवाह करने के लिए चला आ रहा है और उसके लिए सोने का मंडप (शरीर) छाया गया है। वेदी पर परम सुन्दर कन्या

(माया) है जिसका गुण खरगोश और सिंह गा रहे हैं। कबीर कहता है कि ऐ संतो, सुनो (यह आश्चर्य की बात है कि) कीड़े ने पर्वत खा लिया है और कलुआ कहता है कि (इस विवाह में) अंगार भी चंचल हो रहा है और उल्लूकी आध्यात्मिक उपदेश सुना रही है। [टिप्पणी—जीवों का यह रूपक कबीर के रूपक-रहस्य की विशेषता है। जीवात्मा और माया का विवाह होने पर इंद्रियाँ उत्सव मनाने लगती हैं। हाथी, बैल, कौआ, गधा और भैंसा ये कर्मेन्द्रियों के रूप में हैं और सिंह, घूस, चूहा, कलुआ और शशक वे ज्ञानेन्द्रियों के रूप में हैं। यहाँ जिस क्रिया-कलाप का वर्णन है; वह विवाह से संबंध रखता है। 'कीड़े ने पर्वत खा लिया' का तात्पर्य है—देह ने आत्मा को निगल लिया, 'अंगार भी चंचल हो गया' का तात्पर्य है—आध्यात्मिक अनुराग संसार के विषयों की ओर आकृष्ट हो गया और 'उल्लूकी आध्यात्मिक उपदेश सुना रही है' का तात्पर्य है—अज्ञता धार्मिक स्वाँग भर रही है। 'ककड़ी के बड़े' का तात्पर्य है—सच्चा ज्ञान। अंतिम पंक्ति का पाठ होना चाहिए : 'कलुआ कहे अंगार भि लोर उल्लूकी सबदु सुनाइआ'।]

७

बटुवा तो एक (शरीर) है जिसमें बहत्तर (नाड़ियों की) आधारियाँ (लकड़ी की टेवकी जिसका सहारा लेकर साधू जन बैठते हैं।) और जिसका एक ही (ब्रह्म-रंभ्र) द्वार (या मुँह) है। ऐसे बटुवे के साथ जो नौ खंड की पृथ्वी (समस्त पृथ्वी) माँग लेता (अधिकार कर लेता) है, वही सारे संसार में सच्चा योगी है। ऐसा योगी नवों निधि प्राप्त करता है जो नीचे (मूलाधार चक्र) का ब्रह्म ऊपर (सहस्रदल) में ले जाता है। ऐसा योगी ध्यान ही को सुई बनाकर, उसमें शब्द का तागा भाँज कर ढालता है और ज्ञान रूपी खिंये (बख्ख) को सीता है। वह पंच तत्व का तिलक करता है और गुरु के दिखलाए हुए मार्ग पर चलता

है। वह दया की कावड़ी (से ज़मीन साफ़ कर) काया की धूनी (बनाता है) और उसमें अपनी (ज्ञान) दृष्टि की आग जलाता है। उस (ब्रह्म) का भाव हृदय के भीतर लेकर चारों युगों का नाटक लगाता है। इस शरीर में जिसने प्राण दिए हैं उस राम का नाम ही सब योग की सामग्री है। कबीर कहता है, जो उस राम की कृपा धारण करता है वही सच्चा निशाना लगा सकता है। (सच्चा योग कर सकता है।)

८

हिंदू और मुसलमान ये (अलग अलग) कहाँ से आए? ओ किसने यह (धर्म) पथ चलाया? ऐ मूर्ख, अपने हृदय में विचार कर कि बहिश्त और दोज़ख़ किसने पाई? ऐ काज़ी, तूने किस कुरान का उपदेश दिया है? तूने पढ़ते-गुनते हुए सब लोगों को (भुलावा दे दे कर) इस प्रकार नष्ट किया कि किसी को अपने (विनाश का) पता ही नहीं चल पाया। यदि तू शक्ति से स्नेह कर (अर्थात् हिंसा-पूर्वक) सुन्नत करता है तो मैं इसे स्वीकार नहीं करूँगा। यदि खुदा मुझे मुसलमान बनायेगा तो मेरी सुन्नत आपसे आप हो जायगी। और यदि सुन्नत करने से ही कोई मुसलमान होता है तो स्त्री का क्या करेगा? (उसकी सुन्नति तो हो ही नहीं सकता।) अर्धांगिनी स्त्री तो छोड़ी भी नहीं जा सकती, इसलिए हिंदू ही रहना उचित है। (ऐ काज़ी) तू कुरान का पढ़ना छोड़। अरे पागल, तू राम का भजन कर। तू बहुत अत्याचार कर रहा है। कबीर ने तो राम की टेक ही पकड़ी है। मुसलमान लोग (समझा कर) थक-पच गए।

९

मालिनी (पूजा के लिए फूल) पत्ती तोड़ती है, किंतु (यह नहीं जानती) कि पत्ती-पत्ती में जीवात्मा है। प्रत्युत जिम पत्थर (की मूर्ति) के लिए वह पत्ती तोड़ती है वही पत्थर (की मूर्ति) निर्जीव है। मालिनी यह भूल गई है कि सतगुरु देव जानता है (जो उसे उसका दोषदिखला

सकता है। पत्नी में ब्रह्मा है, डाल में विष्णु है और फूल में शंकर देवता है। जब यह (मालिनी) प्रत्यक्ष रूप से इन तीनों देवताओं को तोड़ती है तो सेवा किसकी करती है ? (मूर्तिकार ने) पत्थर को गढ़ कर मूर्ति बनाई। उसकी छाती पर पैर रखकर (उसका निर्माण किया) यदि यह मूर्ति सत्य है तो पहले (उसे) मूर्ति गढ़ने वाले को खाना चाहिए। भात, दाल, लपसी और खेदार पंजीरी तो भोग लगाने वाले ने उड़ा डाली, इस मूर्ति के मुँह में केवल धूल ही पड़ी। (इस मूर्ति का फिट्टे मुँह!) कबीर कहता है कि मालिनी भूल गई और उसके साथ सारा संसार भुलावे में पड़ गया केवल मैं नहीं भूला ! मेरे स्वामी राम और हरि ने कृपा कर मेरी रक्षा कर ली।

१०

(मेरी आयु के) बारह वर्ष बाल्यावस्था ही में कट गए। बीस वर्ष तक किसी प्रकार का तप नहीं किया। तीस वर्ष तक किसी देवता की पूजा नहीं की फिर वृद्ध होने पर केवल पंछताना ही (हाथ) रह गया। 'मेरी-मेरी' करते ही सारा जन्म व्यतीत हो गया। इस (शरीर रूपी) सागर का शोषण करके (काल) सर्प बलवान हो गया। तू सूखे हुए सरोवर (शरीर) की मेंड़ बाँध रहा है, काटे हुए खेत की रक्षा कर रहा है। चोर (काल) आया और तुरंत ही (चोरी करके) ले गया और तू 'मेरी' कहता हुआ मूर्ख बना घूमता है। तेरे चरण, शीश, हाथ कांपने लगे और तेरे नेत्रों की पुतलियों से व्यर्थ ही आँसू बहते रहते हैं, तेरी जिह्वा से शुद्ध वचन भी नहीं निकलते तब तू धर्म कर्म की आशा करता है ? जब हरि जी कृपा करें तभी 'हरि' का नाम लेकर लाभपूर्वक उनमें लौ लगाई जा सकती है। मैंने गुरु के प्रसाद से ही यह हरि (रूपी) धन पाया है। अंत में नाड़ी चली जाने पर (शरीर के निधन पर बिना कष्ट के) हम यहाँ से चले सकते हैं। कबीर कहता है, रे संतों, अन्न, धन (अथवा धन-बन) यहाँ से कुछ भी नहीं

ले जा सकते । जब गोपालराय (ईश्वर) का बुलाया आता है तब इस माया के मंदिर (शरीर) को छोड़कर चले जाना ही पड़ता है ।

११

(ईश्वर ने) किसी को तो रेशमी वस्त्र दिए, किसी को नियाड़ में बुने हुए पल्लंग । किसी को नारियल और प्याज़ तक नहीं थी और किसी को खाने के लिए वरना दिया । इसनिष्ठ हे मन, भोजन के संबंध में विवाद मत करो, केवल उत्कर्म ही करते रहो । कुम्हार (ईश्वर) ने एक ही मिट्टी गूँध कर उसमें अनेक प्रकार की कांति उत्पन्न की । किसी में मोती और मुक्तादल सुमजित किए और किसी में रोग भर दिए । कंजूस को तो धन सूरक्षित करने के लिए दिया है, वह मूर्ख कहता है कि यह धन मेरा है । जब यम का टंठ उसके गिर लगता है तो पल भर में निर्णय हो जाता है (कि वास्तव में धन किसका है ।) ईश्वर का सच्चा भक्त वही कहलाता है जो (उसकी) आज्ञा (मानने) में मुख पाता है । उन्हे जो श्रद्धा लगता है वह सत्य रूप से मानता है और अपना मन शरीर में नहीं लगाता । कबीर कहता है, रे संतो सुनो इस संसार में 'मेरी' 'मेरी' (की माया) झूठी है । कपड़े की पेटी की सँजीर छूटने पर (काल) चीथड़े या गुदड़ी को फाड़ कर उसमें से चमकीला प्रकाशवान रत्न (आत्मा) ले भागता है ।

१२

ऐ काज़ी, तुमसे ठीक तरह बोलते नहीं बनता । हम तो दीन, बेचारे ईश्वर के सेवक हैं और तुम्हारे मन में राजसी बातें भाती हैं । (किंतु इतना समझ लो कि) सर्वप्रथम ईश्वर, धर्म के स्वामी ने कभी श्रत्याचार करने की आज्ञा नहीं दी । तूरोज़ा रखता है, और नमाज़ गुज़ारता (पढ़ता) है किंतु यह समझ ले कि कलमा (जो वाक्य मुसलमान धर्म का मूल मंत्र है—ला इला इल्लिलाह मुहम्मद उर्रसूलिल्लाह ।) पढ़ने से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती । जो (साधना) कर सकता है वह

१६

जिस रावण ने (अपनी रत्ना के लिए) लंका जैसा क़िला बनाया जिसके चारों ओर समुद्र की खाई-सी बनी थी, उस रावण के घर की खबर भी आज किसी को नहीं है। इसलिए (ईश्वर से) क्या माँगते हो कुछ भी तो स्थिर रहने वाला नहीं है। आँखों देखते यह सारा संसार चला जा रहा है। जिस रावण के एक लाख पुत्र और सवा लाख नाती थे, उस रावण के घर में आज दिया-वत्ती भी नहीं है। चंद्र और सूर्य जिसका भोजन पकाते थे और अग्नि जिसके कपड़े धोता था (वह रावण कहाँ है ?) गुरु की आज्ञा से (हृदय में) राम-नाम ही को स्थान दो जो इस प्रकार स्थिर रहता है कि वह कभी नहीं जाता (उसका कभी विनाश नहीं होता।) कबीर कहता है, रे लोगो सुनो, राम-नाम के बिना मुक्ति नहीं होती।

१७

पहले पुत्र हुआ पीछे माता उत्पन्न हुई और गुरु अपने शिष्य के चरण स्पर्श करता है। हे भाई, तुम यह आश्चर्य सुनो कि तुम्हारे देखते हुए गाय सिंह को चरा रही है। जल में रहने वाली मछली पेड़ पर जाकर जनती है और आँखों के सामने कुत्ते को बिल्ली ले जाती है। एक पेड़ है जो नीचे तो बैठता हुआ है अथवा जिसके नीचे तो पत्ते हैं और ऊपर जड़ है, ऐसा पेड़ फूल-फलों से परिपूर्ण है। घोड़ा चरता है और भैंस उसे चराने ले जाती है, बैल तो बाहर ही खड़ा रहता है और गान्नि घर के भीतर (अपने आप) चली आती है। कबीर कहता है, जो इस पद को समझता है, वह राम में रमण करता है और उसे संसार का सारा रहस्य सूझ पड़ता है। [टिप्पणी—यह कबीर की एक उल्टबाँसी है और इसके सारे रूपकों में कार्य-व्यापार की परिस्थिति ठीक बतलाई गई है। आध्यात्मिक पक्ष में इस रूपक में आए हुए नामों का निम्नलिखित अर्थ लेने से अर्थ-संगति स्पष्ट हो जाती है:—

[पुत्र—जीव । माता—माया । गुरु—शब्द । पैला—जीवात्मा । सिंह—ज्ञान । गाय—गाणी । मङ्गनी—कुण्डलिनी । तद्वर—मेरुदंड । कुत्ता—अशर्मा । विन्ती—माया । पैर—सुपुष्पा नादी । फलकूल—चक्र और सहस्रदल कमल । पांदा—मन । भैरव—तामसी मृत्तिका । धैल—पंच प्राण । गौनि—स्वरूप की मिद्वि ।]

१८

जिस माता ने तुझे धिंदु मे पिंड का रूप दिया और उदर-ज्वाला से (बचा कर, सुगन्धित करके) अपने पेट में दस मास रक्खा (उस माता के कण्ठों पर ध्यान न देते हुए) तू माया के बर्शाभूत फिर हो गया ? रे प्राणी, (संसार सुखों के) नाधारण लोभ के लिए तू अपना रत्नरूपी जन्म क्यों खो रहा है ? (ज्ञात होता है कि) पूर्वजन्म की कर्म-भूमि में तूने बीज नहीं बोया । बाल्यावस्था से तू वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ । जो छोना था सो तो हुआ किंतु जब यमराज आकर तेरे केश पकड़ता है तो तू क्यों रोता है ? जब तू जीवन की आशा करता है तब यमराज तेरी साँसों (की गिनती करता हुआ तुझ) को देखता है । कबीर कहता है, यह संसार एक इंद्रजाल है । तू अब भी सँभल कर अपने (कर्मों का) पासा फेंक ।

१९

तन और मन को बार बार सुगंधित पराग-कणों में परिवर्तित कर मैं पाँचों तत्वों को धराती बनाऊँगी और राजा राम के साथ भाँवर (विवाह कर) लूँगी क्योंकि मेरी आत्मा उन्हीं के रंग में रँगी हुई है । हे सौभाग्यशालिनी नारियों, मंगलगीत गाओ क्योंकि मेरे घर स्वामी राजा-राम आए हैं । जिस राम के नामि-कमल से उत्पन्न होकर (ब्रह्मा ने, वेदों की रचना की और (संसार में ज्ञान का विस्तार किया, उसी राम को मैंने पति रूप में पाया है, मेरा इतना बड़ा भाग्य है ! इस अवसर पर इतने ही देवता, मनुष्य और मुनिजन आए हैं । मैं तो जानती हूँ कि

उनकी संख्या तेतीसों करोड़ है। (उन्हीं के सामने) मुझे एकेश्वर भगवान विवाह कर ले चले हैं— ऐसा कवीर कहता है।

रागु सोरठि

१

मूर्ति की पूजा करते-करते हिंदू मर गए और सिर भुका-भुका कर (नमाज़ पढ़ते हुए मुसलमान मर गए। वे हिंदू किसी के मरने पर उसे) जला देते हैं और वे (मुसलमान) गाड़ देते हैं किंतु दोनों ने ही (ऐ मन) तेरे रहस्य को नहीं समझा। ऐ मन, यह संसार बहुत बड़ा अंधा है (जो यह नहीं देखता कि) चारों दिशाओं में मृत्यु का बंधन फैला हुआ है। कवि लोग सुंदर कपड़ों से सजे हुए सभा-भवनों में कविता पढ़ते हुए मर गए और जटा रख-रख कर योगी मर गये फिर भी (ऐ मन) ये लोग मुझे नहीं पहचान सके (तुझ पर विजय प्राप्त नहीं कर सके।) द्रव्य संचित करते हुए राजा मर गए जिन्होंने दुर्गों पर विजय प्राप्त कर बहुत-सा स्वर्ण एकत्रित किया। वेद पढ़-पढ़ कर पंडित मर गए और रूप देख-देख कर नारी भी मर गई। अपने शरीर की ओर देख कर यह समझ लो कि राम-नाम के बिना सभी लोग लुले गए हैं। कवीर यह उपदेश करके कहता है, हरि के नाम के बिना किसने गति पाई है ?

२

इस शरीर का गौरव यही है कि जब जलता है तो भस्म हो जाता है, पड़ा रहता है तो इसे कीट-कृमि खा डालते हैं। कच्चे घड़े भर पानी पड़ता है, (तब उसके नष्ट होने के समान ही यह शरीर है।) क्यों भैया, फूले-फूले फिर रहे हो ? जब दस महीने औंधे मुख रहे थे, वह दिन कैसे भूल गए ? जिस प्रकार मधु मक्खी रस एकत्रित करती है उसी भाँति तुमने जोड़-जोड़ कर धन एकत्रित किया है। मरते समय लोग उसी धन को 'ले लो' 'ले लो' कह कर ले लेते हैं (और तुम्हें बाहर

[illegible]

2

येद पुराण आदि सभी धार्मिक ग्रंथों के विधान मुन पर नूने वने की आशा की (कि उनसे तेरा निस्तार होगा) किंतु जिस समय काल ने लोगों को माना शुरू किया तो ये चतुर् (१) लोग निराश होकर मुन के पास चले । वे मन, इग (दंग) से एक भी कार्य मकल नहीं हो सकना यदि नूने स्तुति राजा का भजन नहीं किया । नादी (जो अनाहत नाद में विश्वास रखते हैं), घेदी (जो घेदों के मानने वाले हैं) शबदी (जो शब्द-ब्रह्म के उपासक हैं) और मौनी (जो जीवन पर्यंत मौन-व्रत धारण करते हैं) साधुओं ने वनखंड में जाकर योग और तप किया और चुन कर सात्विक कंद और मूल का आहार किया किन्तु उनसे भी यमराज का पट्टा ही लियाया गया (अर्थात् ये भी यम के अधिकार-पत्र से शासित हुए ।) जिनके हृदय में नारदी भक्ति नहीं आई और जिन्होंने अपने शरीर को भक्ति के आटंखरी से बहुत अच्छा तरह सजाया और राग एवं रागिनी अलापते हुये आठम्बरी रूप रक्खा, उन्होंने हरि से क्या प्राप्त किया ! समस्त संसार के ऊपर काल की छाया पड़ी है और उसमें जानीजन भ्रम से चित्रवत् लिखे हुए हैं । कबीर कहता है, चे ही कुल सेपक खालसे (शुद्ध) हो सके जिन्होंने प्रेम और भक्ति को

वास्तविक रूप से समझा है ।

रागु तिलंग

१

हे भाई, वेद और कुरान ये झूठे हैं, इनसे हृदय की चिन्ता नहीं जाती । यदि एक क्षण भर के लिए हृदय में थोड़ी स्थिरता ले आओ तो सर्व स्वामी ईश्वर तुम्हारे सामने ही उपस्थित ज्ञात होगा । ऐ वन्दे, तू अपने हृदय में प्रतिदिन खोज और व्यर्थ की व्याकुलता में मत फिर । यह जो संसार है वह एक नगर-मेले की तरह है जिसमें विपत्ति के समय हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं है । तू झूठ-मूठ पढ़-पढ़ कर प्रसन्न होता है और निश्चिन्त होकर ईश्वर के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं पर वाद-विवाद बकता फिरता है । (सत्य तो यह है कि) सर्वश्रेष्ठ ईश्वर ही सच्चा है । वह सृष्टिकर्ता सृष्टि के बीच में ही है किंतु वह श्याम मूर्ति के रूप में नहीं । आकाश के बीच में जो आकाश-गंगा है उसी में उसने स्नान किया था । उसी का सदैव चिंतन कर और अपनी अंतर्दृष्टि से देख कि वह यज्ञ-तन्त्र-सर्वत्र विद्यमान है । अल्लाह (ब्रह्म) ही पूर्ण पवित्र है । उस पर संदेह तो तब किया जाय जब वह एक से भिन्न (दूसरा) हो । कवीर कहता है, वह कृपालु ही जिस पर कृपा करे, वही उसे जान सकता है ।

रागु सूही

२

शासनाधिकार समाप्त हो गया, अब सारा लेखा देना होगा । उसे लेने के लिए यम के निर्दय दूत आ पहुँचे । तुमने क्या सुरक्षित किया है और क्या खां दिया है, शीघ्र ही चलो, दीवान (धर्मराज) ने बुलाया है । दीवान के बुलाने से इसी समय चलो क्योंकि ईश्वर के दरबार का आज्ञा-पत्र आया है । निवेदन के साथ जो कुछ भेंट देना

है दो और यदि कुछ कहना शेष है तो उसे गा दो ।' आज की रात भर है जो कुछ सुलभाना है उसे सुलभा ली । जो कुछ भी तुम्हारा खर्च हुआ है, उसकी पूर्ण रक्षा कर लो । प्रातःकाल की नमाज़ सराय में जाकर गुज़ारना, अदा करना । साधु-संगति से जिसे हरि का रंग लग गया है, वह भाग्यशाली पुरुष धन्य है । ईत (साधारण जन) और ऊत (निस्संतान) बड़े सुखी और सुंदर हैं जिन्होंने (सब भक्तों से रहित होकर) जन्म का अनमोल फल प्राप्त किया है । अन्यथा संसारी मनुष्य ने) जागते-सोते अपना जीवन खो दिया है और संपत्ति जोड़ कर वे दूसरों (अपनी स्त्री और बच्चों) के वश में हो गए हैं । कवीर कहता है, ऐसे ही मनुष्य भूले हुए हैं क्योंकि वे अपने स्वामी को भूल कर मिट्टी (सुंदर स्त्री और धन आदि) में उलभ गए हैं ।

३

(देखते देखते) नेत्र थक गए, सुनते सुनते कान थक गए और (कार्य करते हुए) सुंदर शरीर थक गया । वृद्धावस्था की हुंकार से सब बुद्धि थक गई केवल एक माया ही नहीं थकी । रे पागल, तू ज्ञान का विचार नहीं कर पाया । तूने व्यर्थ ही जन्म गँवा दिया । प्राणी तब तक (सुख के) सरोवर की तृष्णा करता रहता है जब तक कि उसके शरीर में साँस रहती है । यदि वह हरि के चरणों में निवास करने के लिए अपना शरीर भी ले जाता है तो उसके साथ भक्ति-भाव नहीं जाता । जिसके हृदय के भीतर 'शब्द' निवास कर लेता है, उसकी (सांसारिक वासनाओं के प्रति) प्यास जाती रहती है । वह (ईश्वर का) आदेश समझ कर जीवन की चौपड़ खेलता है और मन लगा कर अपने (भावों का) पाँसा डालता है । जो भक्त अविगत (ईश्वर) को जान कर उसका भजन करते हैं, उनका किसी प्रकार भी नाश नहीं होता । कवीर कहता है, वे सेवक कभी नहीं हारते जो पाँसा डालना जानते हैं ।

४

एक दुर्ग (शरीर) है, उसके पाँच विश्वमनीम और बलवान रत्नक (पंच प्राण) हैं। वे पाँचों मुझने कैलियत तलब करते हैं। मैंने किसी की ज़मीन तो जोती-याँई नहीं है। ऐसी स्थिति में) कैलियत पेना दुःखप्रद मालूम होता है। ऐ हरि भक्तों, मुझे इस दुर्ग के पटवारी मन) की नीति उसती या दुःख देगी है। जब मैंने भुजा उठा कर गुरु की रक्षा के लिए पुकारा तब उन्होंने मेरा उद्धार कर लिया। उस दुर्ग में नौ तो दंड देने वाले जमादार (नव द्वार) हैं और दस दीरने वाले मुंसिफ (दस इंद्रियाँ) हैं। वे किसी (भक्ति-भाव की) प्रजा का निवास करने नहीं देते। वे (बुद्धि की) पूरी डोरी नापते भी नहीं हैं और बहुत वेगार लेते हैं। बहत्तर कोठे वाले घर (शरीर) में एक पुरुष (अहंकार) समाया हुआ है, उसी ने मेरा नाम (वेगार में) लिखा दिया है। जब धर्मराज का चिट्ठा देखा गया तो मेरे ऊपर न पावना था न देना। अतः संतों की कोई निंदा न करे क्योंकि संत और राम एक ही हैं। कबीर कहता है, मैंने वह गुरु पा लिया है जिसका नाम विवेक है।

राग गौंड

१

संत के मिलने पर उससे कुछ सुनना-कहना चाहिए। यदि असंत मिले तो चुप हो रहना चाहिए। बाबा, उनसे क्या बोलना और क्या कहना! चुप होकर जैसे राम नाम में ही लीन हो जाना चाहिए। संतों से बोलने में तो उपकार होता है किंतु मुख से बोलना मानो भूख मारना है। बोलते बोलते ही तो बुराई बढ़ती है। न बोलने से वह बेचारा क्या कर सकता है! कबीर कहता है, खाली घड़ा ही आवाज़ करता है; जो भरा होता है उसका पानी हिलता भी नहीं है (और वह शब्द भी नहीं करता।)

२

मनुष्य मर कर मनुष्य के भी काम नहीं आता । पशु मर कर दस काम सँवारता है । फिर मैं अपने कर्मों की क्या गति समझूँ ! हे बाबा, मैं क्या समझूँ ! हड्डियाँ इस तरह जल जाती हैं जैसे काठ और केश इस तरह जल जाते हैं जैसे घास का पूला । कबीर कहता है, मनुष्य तो (अपनी मोह-निद्रा से) तभी जागेगा जब यमका दंड उसके सिर पर लगेगा ।

३

आकाश में गगन है, पाताल में भी गगन है, चारों दिशाओं में गगन रहता है । वहीं आनंद-मूल चिरंतन पुरुषोत्तम है । इसलिए शरीर के विनष्ट होने पर गगन विनष्ट नहीं होता । यही देख कर मुझे वैराग्य हो गया । यही जीवात्मा यहाँ आकर कहाँ चला जाता है ? (पुरुषोत्तम ने) पंच तत्वों को मिला कर शरीर का निर्माण किया, इसमें जीवात्मा जो तत्व है उसका निर्माण किस वस्तु से किया ? तुम जीव को कर्मवद्ध कहते हो तो कर्म को किसने जीवन प्रदान किया ? हरि में ही पिंड है और पिंड ही में हरि है वही हरि सर्वमय और निरंतर है । कबीर कहता है, मैं राम-नाम को नहीं छोड़ूँगा । जो कुछ स्वाभाविक रीति से हो रहा है, उसे होने दो ।

४

[कहा जाता है कि सिकंदर लोदी ने कबीर को दंड देने के लिए उन्हें बाँध कर हाथी के सामने फेंक दिया था । किंतु हाथी चिंघाड़ मार कर दूर भाग गया था । उसी अवसर का यह पद ज्ञात होता है ।] मेरी भुजाएँ बाँध कर, मुझे पिंड बनाकर (हाथी के सामने) डाल दिया किंतु हाथी ने क्रुद्ध होकर अपना सिर पृथ्वी पर दे मारा । फिर भाग कर चीत्कार करने लगा । मैं प्रभु के रूप की बलिहारी जाता हूँ । तू मेरा स्वामी है और यह तेरी ही शक्ति है (कि हाथी चीत्कार करता